आचार्यों की प्रभु भक्ति

स्त्रोतों का हिन्दी अनुवाद

आशीर्वाद

आचार्य श्री 108 विद्याभूषण सन्मतिसागर जी महाराज

आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज

पद्यानुवाद कर्त्री

परम पूज्य विदुषी लेखिका

आर्यिक रत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माताजी

प्रकाशक

श्री स्वस्ति साहित्य प्रकाशन समिति दिल्ली

अन्तर्गत

श्री स्वस्ति कल्याण समिति (रजि.)

❉ कृति : आचार्यों की प्रभु भक्ति का हिन्दी अनुवाद

❉ कृतिकार : आयिकारत्न 105 स्वस्तिभूषण माताजी

❉ संस्करण : द्वितीय, सन्- 2022

❉ आवृत्ति : 1000

❉ न्यौछावर राशि : 50/-

❉ प्राप्ति स्थान :
1. स्वराज जैन (फरीदाबाद)
फोन नं. 09868345768
2. राहुल जैन (दिल्ली)
फोन नं. 9212512167, 7906062500
3. श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
'स्वस्तिधाम' जहाजपुर (राज.)
फोन नं. 9784853787, 9782063107
तलवंडी, कोटा (राजस्थान)

❉ मुद्रक : विकास आफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र
गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)
फोन:0755-2601952, 425005624

परिचय

अतिशय तीर्थक्षेत्र स्वस्ति धाम, जहाजपुर

चैत्र का महीना, शुक्ल पक्ष, तेरस तिथि, सन् तेरह, तेईस अप्रैल, मंगलवार, महावीर जंयती के शुभ दिन भगवान मुनिसुव्रतनाथ भूगर्भ से प्रकट हुये। अतिशयकारी प्रभु ने निकलते ही अतिशय दिखाया, निकले थे तब नीले रंग के थे फिर हरे, स्लेटी, काले रंग के हो गये जिस दिन से ये घोषणा की कि ये भगवान मुनिसुव्रतनाथ है उस दिन से गहरे काले रंग के हो गये। सारे गांव में हल्ला हो गया और अपार भीड़ एकत्रित हो गई। चारों तरफ भगवान की जय-जयकार हो रही थी।

अष्टान्हिका पर्व पर आ.105 स्वस्ति भूषण माताजी पधारी थी सिद्धचक्र विधान के समय माताजी ने कहा था कि यहाँ भगवान भूगर्भ से निकलेंगे। लोगों के मुख पर यही चर्चा थी कि माता जी की वाणी सत्य हो गई। जहाजपुर वासियों के लिए ऐसा नजारा विलक्षण था। ये जे.सी.बी. पर झूलते प्रभु की लीला सभी देख रहे थे। अतिशय प्रारम्भ हो रहा था। शक्ति पत्थर में नहीं, शक्ति का केन्द्र तो परमात्मा और उनके भक्तों के 26 जूलाई 2014 (शनि अमावस्या) के दिन भावों में होती है।

अरावली पर्वतमाला की सुरम्य श्रृंखलाओं के तलहटी में स्थित ऐतिहासिक जहाजपुर कस्बे के भूगर्भ से प्रकटित भगवान श्री1008 मुनिसुव्रतनाथ जी की दिव्य एवं चमत्कारिक प्रतिमा को पूजनीया आ.स्वस्ति भूषण माता जी की दिव्य कृपा के सान्निध्य में स्थापित किया गया है। 55 बीघा जमीन पर बने अतिशय क्षेत्र में नव निर्मित 'स्वस्ति धाम' की महिमा अपनी दिव्यता एवं अध्यात्मिक शक्ति की चेतना से पूरे देश में विख्यात हो चुकी है। लगभग ढ़ाई टन वजनी श्याम वर्णी दिव्य अतिशयकारी प्रतिमा के दिव्य दर्शन कर अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करने के लिए आने वाले भक्तों का तांता लगा रहता है।

भूगर्भ से प्रकट होने के उपरान्त जे.सी.बी से बड़ी मुश्किल से निकली थी और 18 जून को स्वस्ति धाम में स्थापना हेतु लाते वक्त पांच श्रृद्धालुओं द्वारा आसानी से उठ जाना किसी अतिशय से कम नहीं था। स्वस्ति धाम में आने के बाद 100 लोग नहीं उठा पा रहे थे और माता जी के स्वस्ति धाम में आते ही फिर हल्की हो गई और उन्हीं पांच लोगों ने वेदी में विराजमान कर दिया।

21 जुलाई 2013 माता जी का चातुर्मास की मंगल कलश स्थापना के दिन चारों ओर से भक्त आये थे। शाम चार बजे मंगल कलश स्थापना हुई रात्रि 8 बजे मुरार से आया एक बालक (उम्र 14-15 वर्ष) तथा एक जहाजपुर का बालक दोनों प्रभु के दर्शन कर रहे थे, उन्होंने देखा कि भगवान की नाभि से एक दिव्य ज्योति निकली और नाभि के नीचे स्पंदन और जैसे सांस लेने में पेट अन्दर बाहर होता है ऐसा होने लगा। उसने अपने मम्मी पापा जी तथा लोगों को बताया। कुछ ही समय में भीड़ इकटठी हो गई। माता जी को बुलाकर दिखाया तो ये अतिशय उन्हें भी दिखा। समाचार आग की तरह फेसबुक,व्हाटसेप, मैसेज के माध्यम से पूरे भारत में फैल गये। जिसने सुना वह अपने आप को आने से रोक नहीं पाया। कुछ ही समय में लाखों लोगो ने इस अतिशय को अपनी आंखों से देखा। 28 जुलाई को प्रभु के माथे पर कभी ॐ के आकार में रेखायें दिखाई देती, कभी विलुप्त हो जाती।

26 जुलाई 2014 शनि अमावस्या को सुबह करीब 500 लोगों ने अभिषेक किया फिर मंचीय प्रोग्राम चल रहा था। कोटा से आये लोगों ने 1008 दीपकों से आरती की, थाल रखने जब अंदर प्रभु के चरणों मे आए तो देखा की भगवान का स्वंयमेव अभिषेक चल रहा था भगवान की दांयी आंख से दिव्य रोशनी निकल रही थी। करीब पांच हजार लोग उस समय क्षेत्र में उपस्थित थे। भक्त उस समय अपने आप को धन्य और भाग्यवान मान रहे थे कि आज उन्होनें अपनी आंखों से भगवान का अतिशय देखा।

जाने ऐसे कितने लोग है जिनकी मनोकामना पूर्ण हो गई और वे भगवान के चरणो में भक्ति कर रहें थे।

त्रिलोक तीर्थ प्रणेता आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज की शिष्या परम विदुषी लेखिका आ.105 स्वस्ति भूषण माताजी आचार, व्यवहार एवं कार्य से निरन्तर सामाजिक चेतना के नये आयाम स्थापित कर रही है। अध्यात्म एवं तप के कठोर सोपानों को चढ़ते हुये अपने कोमल इरादों को सत्य के कठोर धरातल पर परीक्षित करते हुए अब तक 30,000 कि.मी. की पैदल यात्रा ने आर्यिका श्री को तन और मन से दृढ़ता प्रदान की। ध्यान योग के शताधिक शिविरों का आयोजन, 100 जैन साहित्य ग्रथों की रचना, सम्मेदशिखर जी की 121 वंदना, घर–घर में सुख–शांति, वैभव व समृद्धि के लिए 300 से अधिक शुभकामना परिवार का गठन, स्कूल कोटा की आदि कोचिंग में लाखों विद्याार्थियों को सम्बोधन, सेंट्रल जेल अम्बाला, रुड़की, सोनीपत, करैरा, कोटा, जयपुर आदि में कैद दुर्दान्त कैदियों को सदाचार का पाठ पढ़ाने का साहस करने वाली आर्यिका श्रेष्ठ का वैराग्य सिर्फ आत्म कल्याण के लिए नही अपितु जन–जन के कल्याण का संवाहक बनने लगा।

स्वस्ति धाम का विशाल स्वरूप

जहाजनुमा बन रहे जिनालय का स्वरूप अद्भुतः–

जहाज मंदिर जिनालय आकर्षण का केन्द्र है। दो कि.मी.दूर बनास नदी का घाट आस–पास फैली पर्वत श्रृंखलाएं अपनी हरीतिमा और नैसर्गिक सौंदर्य से आने वालों का मन स्वतः मोह लेती है।

यात्रियों के लिए सुविधायेंः–

स्वस्ति धाम पर ठहरने एवं भोजन की समुचित व्यवस्था है। आचार्य सुमतिसागर भवन (यात्री निवास) में 108 कमरे, 12 बड़े हॉल एवं अन्य स्थान भी निवास हेतु निर्माण हो गया है तथा संतों के विश्राम हेतु एक विशाल संत निवास है। एक 40 कमरे 100, 200 का बड़ा हॉल युक्त मांगलिक भवन है। यहाँ आकर लोक असीम शांति अनुभव करते है।

वार्षिक मेला व अन्य आयोजनः-

इस स्थल पर प्रत्येक शनिवार और रविवार विशेष अभिषेक महाशांति धारा और महाआरती होती है। प्रतिदिन भी अभिषेक, शांतिधारा होती है। समय-समय पर भक्तों द्वारा विधान एवं चालीसा आयोजन किये जाते है।

प्रत्येक शनि अमावस को विशाल मेला व विशेष अभिषेक, महाशांतिधारा एवं अनेक प्रोग्राम होते है। दशलक्षण के बाद अग्रिम रविवार को विशेष कलशाभिषेक का मेला किया जाता है ।

प्रबन्धनः-

स्वस्ति धाम की देख रेख एवं निर्माण का कार्य श्री मुनिसुव्रतनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्वस्तिधाम समिति के अधीन निरन्तर गतिमान है। वर्तमान में यहां संत निवास यात्री निवास का निर्माण हो चुका है तथा विश्राम गृह, भोजनशाला का निर्माण कार्य हो चुका है एवं सहस्त्रकूट जिनालय आदि कुमार मांगलिक भवन मुख्य कुबेर, द्वार, मानस्तम्भ का कार्य भी हो चुका है। आने वाले समय में यह स्थान बहुत बड़े तीर्थ के रूप में परिणत होगा, इस संभावना का दृष्टिगत रखते हुये क्षेत्र का विकास योजना बद्ध रूप से किया जा रहा है।

जहाजपुर क्षेत्र में फैली इस पुरा सम्पदा की अनमोल धरोहर को संरक्षित करने में सभी की सहभगिता अत्यंत जरुरी है। सभी भक्तों से विनम्र अपील है कि इस स्थान को और अधिक आकर्षक, सुविधा युक्त और रमणीक बनाने में अपना तन-मन-धन से भरपूर सहयोग दे और पुण्य में सहभागी बने। भगवान की इस अतिशयकारी दिव्य प्रतिमा के दर्शन से आपके जीवन में आशीषों के भण्डार भरते है। जो एक बार आया वो बार-बार आया। जो कभी नहीं आया वह सदा पछताया। 'चलो स्वस्ति धाम' का भाव मन मे धारण कर और अवश्य दर्शन का लाभ उठायें।

~~***~~

छंदो को गाने की सरल तर्ज

शंभू छंद	–	भला किसी का... मीठे रस से भरी जिनवाणी
दोहा	–	जिनवर तू हैचंदा
शंभू	–	भगवान तुम्हे में खत लिखती
शंभू	–	मधुवन के मंदिरों मे....
भुजंग प्रयात	–	जैनी होके पानी न छाना... नरेन्द्र फणीन्द्रं दयालु प्रभु से दयामांगते
त्रिभंगी छंद	–	पिच्छी रे पिच्छी ... रोम–रोम से निकले.... कितना सुन्दर तेरा द्वारा .....
पद्धरि छंद	–	दुनियाँ में गुरु हजारों हे ... कभी तो ये बाबा.... केसरिया–2 हे वीर तुम्हारे द्वारे पर...
शेर चाल	–	रंग मा–2 दे दी हमें आजादी बिना प्रभु पतित पावन .... जिस देश में, जिस वेश में.... मेरा जीवन बिन भजन के सूना..
चाल छंद	–	ऐ मेरे वतन के लोगो तुम सम्मेद शिखर को जइयों
चौपाई	–	हे गुरुवर धन्य हो तुम
गीता छंद	–	प्रभु पतित पावन.....

सात दिन में सात स्त्रोतों का पद्यानुवाद

परम विदुषि लेखिका आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्ति भूषण माताजी हजारों साधुओं के मध्य इस तरह सुशोभित प्रतीत होती है। जिस तरह करोड़ो चांद के मध्य एक चंद्रमा शोभायमान होता है। जिन्होने अपनी लेखनी के माध्यम से सत्य,अहिंसा,त्याग,सदाचार एवं अपनी ओजस वाणी के माध्यम से संसारी प्राणियों को महान हित किया है। लेकिन कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी होते है जो देश,समाज,साहित्य और धर्म के क्षेत्र में अद्वितीय पहचान बन जाते है,उनमें से एक महान व्यक्तित्व पूज्य गुरुमाँ स्वस्ति भूषण माताजी है उन्होंने ऐसा उपकार समाज के ऊपर किया है जिसे वर्तमान ही नहीं अपितु भविष्य की पीढ़ी भी नही भूल सकती ।

गुरू माँ ने मात्र 53 वर्ष की अल्प आयु में ही अपनी लेखनी के माध्यम से 103 कृतियों की रचना पूर्ण कर ली है। जिसमें बड़े-बड़े विधान, जैसे कल्पदुम विधान,कर्मदहनविधान प्रमुख है। इसी तरह अपनी लेखनी को निरन्तर चलाते हुए आपके हाथों मे यह 103 वीं कृति ‘‘आचार्य की प्रभु भक्ति’’ है।

जिसमें इतने सरल और सरस स्तोत्रो का संगह है जो आपने जीवन में नहीं पढ़ा होगा ऐसे महान स्त्रोत जो हम संस्कृत व प्राकृत में होने के कारण पढ़ नहीं पाते और उनसे वंचित रह जाते है जैसे जिन सहस्त्रनाम स्तोत्र,वृहत स्वयंभू स्तोत्र,एकीभाव स्तोत्र,विषापहार स्तोत्र चतुर्विंशतिका स्तोत्र,आचार्यो की देश भक्ति आदि परन्तु अब हम इन स्तोत्रों,को पढ़ सकते है और समझ सकते है एक एक लाइन को पढ़ते ही, उसका अर्थ स्वयं ही समझ आ जाता है, जिससे भक्ति मे मन स्वयंमेव लग जाता है और भक्ति का पूर्ण आनंद प्राप्त होता है। और इस ज्ञान अध्ययन का पूरा श्रेय गुरु माँ स्वस्ति भूषण जैसी महान विभूति को जाता है। जिन्होने मात्र 30 दिनो में इतने स्तोत्रो को हिन्दी रूपान्तरण करके पूर्ण किया हैं। जिनको

ज्ञानोपयोग निरन्तर आत्म विशुद्धि के लिए प्रवर्तमान रहता है ऐसी अभीक्षण ज्ञानोपयोगी ने अपने आगम के रहस्य को लिपिबद्ध ही नही बल्कि आचरण मे भी उतारा है चंदन से भी अधिक सुंगंधित आत्म गौरव को प्रगटित करने वाली आपकी लेखनी ने समस्त भारत में एक नया इतिहास रच दिया। अनेकान्त सिद्धांत को स्याद्वाद शैली के रहस्य को समझने वाली आपकी मधुर, सरल सरस व प्रिय वाणी भी जिज्ञासुओ को केवल शास्त्रीय समाधान ही नही देती अपितु सम्यक्त्व की उत्पत्ति और फलोत्पत्ति मे भी निमित्त बनती है। आप संस्कार रहित प्राणियो को ऐस संस्कार प्रदान करती है, जिससे उनका वर्तमान भावी व सम्पूर्ण जीवन सुधर जाता है ।

आप जैसे गुणो व ज्ञान प्राप्ति की भावना भाते हुए प्रभु से अनंतो बार यही प्रार्थना है कि हे गुरु माँ आपका सम्यक् श्रुत ज्ञान निकट भव में केवल ज्ञान रूप परिणत हो।

ऐसी मंगल भावना के साथ गुरु माँ स्वस्ति भूषण माताजी के चरणों मे त्रय बार वंदामि,वंदामि,वंदामि।

शालू दीदी (संघस्थ)

~~***~~

{ भूमिका }

जैन स्तोत्र साहित्य एवं आर्यिकारत्न श्री स्वस्तिभूषण माता जी कृत स्तोत्र -पद्यानुवाद

-कर्मयोगी डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'
महामन्त्री-श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्
एल 65,न्यू इन्दिरानगर,बुरहानपुर(म.प्र.)
मो. 9826565737

जिन-भक्तिधारा के आधार स्तंभ स्तोत्र होते हैं। भक्ति का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि- ''गुणेष्वनुरागः भक्तिः'' अर्थात् गुणों के प्रति अनुराग का नाम भक्तिहै। हर जिनेन्द्र भक्त चाहता हैकि उसके आसन्न संकटों से मुक्ति मिले, जिन-गुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो, वह भी जिनेन्द्र बने। इस हेतु अनेक काव्यमय स्तोत्रों के रचनाकारों को लक्ष्य यश प्राप्ति नहीं था; लेकिन उन्हें भरपूर यशमिला। अर्थ उनके लिए इष्ट नहीं था लेकिन अर्थ का अर्थ प्रयोजन मोनं तो प्रयोजन की सिद्धि हुई। वे व्यवहार पक्ष के जानकार थे। कल्याणपक्ष की रक्षा ओर संसार से शीघ्र परिनिवृत्ति के लक्ष्य से वे भटके नही, उनका स्तोत्र के रूप में सहज उपदेश कान्तासम्मत से कम नहीं था। वे विरोधी नहीं थे, बल्कि मित्रवत् सलाह देना चाहते थे। उनकी सरसता का पक्ष प्रबल था क्योंकि वे रस-विरक्ति चाहते थे। वे सहज कवि थे। उनमें बनावटीपन नहीं था। भक्ति में बनावट चलती ही कहाँ है ? उनके लिए अंलकार भौतिक एवं धातुक नहीं थे बल्कि गुणात्मक थे;जिनकी सुन्दरता असुन्दर को भी सौन्दर्यवान् बना देती है। इन स्तोत्रकारों का हृदय सांसारिक दुःखों से परिचित था और वे चाहते थे कि हृदय में वैराग्य की ज्योति मद्धिम न पड़ने पाये।

यही कारण है कि जहाँ इन स्तोत्रों का कलापक्ष महत्वपूर्ण है वहीं भावपक्ष और भी महत्वपूर्ण है । ये भाव आत्मिक हैं, आत्म हितकारी हैं।

संसार में व्यक्ति की दो कामनाएं प्रमुख होती हैं 1 संसार में सुख की प्राप्ति, 2 संसार से मुक्ति अर्थात पारलौकिक सुख। स्तोत्रकारो ने इन दोनों ही लक्ष्यों को अपने स्तोत्रों का प्रिय विषय बनाया। उनकी मान्यता रही है कि जो इस स्तुति रूपी भक्ति को करेगा वह कभी संसार में दुःखी नही होगा और भक्ति यदि चरम पर पहुँच गयी तो मुक्ति की भी प्राप्ति असंभव नहीं होगी।

भक्ति का शुभारंभ जिन-गुणों मे श्रद्धा एवं जिनगुणों के कीर्तन या स्तवन से होता है । आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने स्तुति का स्वरूप बताते हुए कहा है कि -

गुणस्तोकं सदुल्लङ्, तद बहुत्वकथास्तुतिः।
अनान्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम्।।

अर्थात विद्यमान अल्प गुणो का उल्लंघन करके उन गुणों की गुणानुवाद, समयग्दर्शन की महिमा का बखान, स्वपरहित की कामना, जैनधर्म का वैशिष्ट्य बताना एवं भक्ति भावना का निदर्शन है,स्तोत्र शब्द संस्कृति की 'स्तु' धातु से निष्पन्न होता है,जिसका अर्थ स्तुति करना या प्रशंसा करना है- स्तुयतेऽनेनेति। स्तु ऋ+ष्ट्रन्। (ष्टुप् स्तुतौ)।

स्तोत्र के लिए मूलतः 'थय' और 'थुई' शब्द मिलते है जो स्तव और स्तुति के अर्थ में प्रयोग होते हैं।

अभिधान राजेन्द्रकोश (पुस्तक-4, पृ. 2413) के अनुसार स्तुति के दो प्रकार है-

स्तुतिः द्विधा-प्रमाण रूपा, असाधारणगुणोत्कीर्तनरूपा च ।

अर्थात् स्तुति 1 प्रणाम रूप, 2.असाधारण गुणों के बारंबार कथन रूप होती है।

आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी ने मूलाचार गाथा- 24 में स्तव के विषय में कहा है कि-

उसहादिजिणवराणं णामणिरुत्तिं गुणाणुकित्तिं च।
काऊण अच्चिदूण य तिसुद्धिपणामों थवो णेओ।।

अर्थात् ऋषभ आदि तीर्थकारों के नाम का कथन और गुणों का कीर्तन करके तथा उनकी पूजा करके उनको मन-वचन-काय पूर्वक नमस्कार करना स्तव नाम का आवश्यक जानना चाहिए।

जैन स्तोत्रों का लक्ष्य सर्वदु:खों से मुक्ति प्राप्त कर आत्मा से परमात्मा बन जाना रहा है आत्मविकास के लिए यहाँ बाह्य साधनों को भी लक्ष्य नही किया है अपितु शरीर और आत्मा को साधन मानकर साध्य की प्राप्ति करना बताया है। आचार्य श्री मानतुंग स्वामी कहतें है कि-

नात्यद्भुतं भुवन भूषण!भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्याभवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।।

अर्थात् हे संसार के भूषण और प्राणियों के नाथ! सच्चे गुणों के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले पुरुष पृथ्वी पर आपके बराबर हो जाते हैं; क्योंकि ऐसे स्वामी से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता जो इस लोक में अपने अधीन पुरुष का सम्पत्ति के द्वारा अपने बराबर नहीं करता। स्तुति का फल दर्शाते हए आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि- ''स्तुतिः स्तोतुः साधोंः कुशलपरिणाम सा तदा।'' अर्थात् भगवान की स्तुति, स्तुति करने वाले भव्य पुरुष के पुण्य -साधक प्रशस्त परिणाम के लिए होती है।

जैन स्तोत्रों का एक लक्ष्य बंधन मुक्ति भी है। जिनभक्त की कामना होती है कि उसके दु:खो का क्षय हो,कर्मों का क्षय हो,बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गम हो, समाधिमरण हो और उसे जिनगुणों की सम्पत्ति प्राप्त हो- दु:क्खखओ, कम्मखओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिनगुण सम्पत्ति होउ मज्झं।

भक्ति का रस शान्त माना गया है । उपासना शान्त भावों से की जाती है, जिससें मन, वचन-काय की एकता अर्थात मानसिक , वाचनिक एवं कायिक शान्ति को प्रमुखता दी जाती है ताकि अन्तिम उद्देश्य कार्य की

शान्ति (सिद्धि) संभव हो सके। भक्ति में यदि कहीं सांसारिक दु:खी हों बल्कि लक्ष्य यह है कि व्यक्ति दु:खोंसे मुक्ति का उपाय सोचे, उपाय करे और दु:खों से मुक्त हो। संसार के प्रति अरुचि उत्पन्न कर वैराग्य भाव जगाना ही भक्ति का इष्ट रहा है।

रत्नत्रय की प्राप्ति की भावना से सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र तथा इनके धारकों का गुणगान स्तोत्रों में आवश्यक माना गया है। यह तो सभी जानते है कि संसार रूपी वृक्ष की जड़ मिथ्यात्व है और धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। अत: मिथ्यात्व छुड़ाकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करना,सम्यक्त्व स्तोत्रकारों को अभिप्रेत रहा है। सम्यक्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र की मुक्तिमार्ग में महती भूमिका होती है। अत: सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र का प्रतिपादन भी इन स्तोत्रकारों ने किया है।

प्रमुख स्तोत्र -

प्राकृत जैन स्तोत्र साहित्य का उद्‌गम ई.पू.6ठी शती माना जाता है। प्रमुख प्राकृत स्तोत्र इस प्रकार हैं-

1. जयति हुअणस्तोत्र (रचयिता-श्री गौतमगणधर)

2. उवसग्गहर स्तोत्र

यह भद्रबाहु स्वामी विरचित मात्र 7 श्लोक प्रमाण स्तोत्र है । जिसमें उपसर्ग विजेता भगवान पार्श्वनाथ के गुणो का स्तवन किया गया है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथ को कर्मबंधन मुक्त, मंगलकारी, निर्विषकर्त्ता बतलाया गया है।

विसहर - फलिंगमंतं, कंटे धारेदि जो सया मणुवो।
तस्सगह- रोग-मारी, दुट्ठ-जराजंति उपसामं।।

3 . दश भक्ति संग्रह (रचयिता-आचार्यश्रीकुन्दकुन्द)

परम वंदनीय आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी

बीसवीं शताब्दी की प्रशस्त आचार्य श्रमण शान्तिसागर जी(छाणी)

महाराज से प्रारंभ आचार्य परम्परा में आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज (भिण्ड), मासोपवासी आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज, आचार्य श्री स्याद्वाद विद्याभूषण श्री सन्मतिसागर जी महाराज ने अपने आचार्यत्व से संघ का नेतृत्व किया और समाज को सम्यक्त की ओर वृद्धिंगत किया।

आचार्य श्री स्याद्वाद विद्याभूषण सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा दीक्षित अत्यन्त प्रबुद्ध एवं साहित्य सृजनशील तप:साधक आर्यिकाओं में परम वंदनीय आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने आर्यिका दीक्षा से पूर्व की अपने वाग्वैदग्ध, मिलनसारिता, अपनत्व, स्नेह, परोपकारिता, संघ परिचर्या, तीर्थ संरक्षण भावना, देव-शास्त्र-गुरुभक्ति से सभी को प्रभावित किया और कदम संयम मार्ग पर बढ़ाते हुए आर्यिका व्रत ग्रहण किये और अपने गुरुप्रदत्त नाम 'स्वस्तिभूषण' के अनुरूप स्वस्तिकारी स्वस्तिकारी कार्यों में अपना उपयोग लगाया; परिणाम आज पाँच रूपों में सामने है-

1. आर्यिका व्रत का पालन, संघ का संचालन
2. तीर्थ क्षेत्रों, मन्दिरों का संरक्षण, विकास एवं प्रभाव का प्रसार
3. भक्ति साहित्य-स्तोत्र , चालीसा , पूजा विधान आदि का सृजन
4. श्री मुनिसुव्रतनाथ दि.जैन अतिशय क्षेत्र 'स्वस्तिधाम ' की स्थापना,तीर्थ निर्माण
5. स्तोत्र साहित्य का पद्यानुवाद।

आपकी एक रचना आमजन के मुख पर विराजमान हुई ;जिसका शीर्षक है- 'बड़ा ही महत्व है।' उसी के तर्ज पर मैं भी कह सकता हूँ कि-

नारियों में आ - भूषण का
हिन्दी कवियों में भूषण का
आर्यिकाओं में स्वस्तिभूषण का बड़ा ही महत्व है।

आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी द्वारा रचित भक्ति साहित्य-

जैनधर्म-दर्शन के अनुरूप भक्ति परम्परा भी अनादिकालीन है ।

देव-शास्त्र-गुरु भक्ति से अभ्युदय एवं नि:श्रेयस सिद्धि मानी गयी है। जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से निधत्ति और निकाचित् जैसे कर्म भी नष्ट हो जाते है। भक्ति के बल पर भक्त संसार,शरीर,माया को छोड़कर भगवान् बन जाता है। कविवर श्री द्यानतराय जी ने लिखा है-

यह भवसमुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठही।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही।।

भक्ति के लिए तदनुरूप सहित्य समय-सयम पर रचा गया। आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी ने विपुल मात्रा मे भक्ति साहित्य रचा और इस साहित्य की विशेषता यह है कि यह समस्त साहित्य महान् आचार्य श्री कुन्दकुन्द श्री आम्नाय के अनुरूप ही रचा गया । इनमें कुदेवों की आराधना रूप गृहीत मिथ्यात्व का अभाव है;साथ यही विधानादि में अष्टद्रव्य की निर्दोषता का भी ध्यान रखा गया है।

आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी कृत पद्यानुवाद

प्रस्तुत इस नवीन कृति में परम वंदनीया आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी निम्नलिखित स्तोत्रों एवं भक्तियों के पद्यानुवाद किये हैं; इनका संक्षिप्त परिचय एवं विशेषताएं इस प्रकार है-

1. वृहत् स्वयंभू स्तोत्र (चतुर्विंशति स्तोत्र)-

जैनधर्म में चौबीस तीर्थकरों का भक्ति के लिए अनुपम एवं अनिवार्य स्थान है। आचार्य श्री समन्तभद्र ने बृहत् स्वयंभू स्तोत्र की रचना की। इसका अपरनाम चतुर्विंशति स्तोत्र है। इस स्तोत्र की विशेषता भक्ति रस की चरम सीमा और जैनधर्म एवं दर्शन के चिन्तन को अभिराम रूप से प्रस्तुत करना है। इसमें तीर्थकरों के उपदेश भी हैं उनकी विशेषताएं भी। आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी जब इनका पद्यानुवाद कर रही होंगी तो उनके सामने चुनौती रही होगी कि आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी जैसे महान् वाग्मी, तार्किक, संस्कृत स्तोत्र रचना में सिद्धहस्त रचनाकार की

कृति को किस तरह हिन्दी पद्य में ढालें कि पद्यानुवाद में मौलिकता क्भी झलके ओर मूलरचनाकार के विचारों की भी रक्षा हो। पद्यानुवाद देखने के बाद मैं कह सकता हूँ कि माता जी अपने कृतित्व मे सफल हुई हैं। उनके इस अनुवाद में लय भी है, शब्द सौष्ठव भी है, कवित्व भी है और शब्दों कों नाप तौल कर रखने की समझ भी। श्री ऋषभनाथ जिन स्तवन का प्रथम पद ही इसका प्रमाण देता है–

आप स्वयं ही प्रभु बने, पर का उपदेश नहीं लीना ।
सम्यग्ज्ञान नेम को पाके , सब प्राणी का हित कीना।।
गुण समूह से युक्त वचन से, पाप रूप तम हरते हो।
चन्द्रकिरण सम गुण किरणों से, सबको शोभित करते हो।।

इसी तरह श्री नमिनाथ जिन स्तवन के तृतीय एवं चतुर्थ पद्य में आपने कमाल किया है; देखिए किस तरह चार पंक्तियों में जैन दर्शन के सप्तभंग, नय विवक्षा तथा अहिंसा और अपरिग्रह का संदेश मूर्त रूप लेकर प्रस्तुत होता है–

तीन भुवन के ज्येष्ठ गुरु हो, सप्तभंग बतलाये हैं।
बहुनय से ही होय विवक्षा, विधि निषेध कहलाते हैं।।
करें अपेक्षा इक दूजे की , तभी वस्तु व्याख्या होती।
उभय औ अनुभय मिश्र कहा है, सप्तभंग के हैं मोती।।3।।
प्राणी अहिंसा परम ब्रह्म है, जग में ऐसा विदित हुआ।
जहाँ परिग्रह थोड़ा भी हो, नहीं अहिंसा नही दया।।
इसीलिये प्रभु दोनों परिग्रह , छोड़ महाव्रत धारे थे।
विकृत वेश को दूर से छोड़ा , आप जगत में न्यारे थे ।।4।।

यह पद्यानुवाद पठनीय और मननीय है।

2. सहस्त्रनाम स्तोत्र–

जिनेन्द्र भगवान् के 1008 नाम माने गये हैं जिनकी स्तुति करना,

नाम जाप करना श्रावक-श्राविकाओं,आबालवृद्धजनों के लिए इष्ट माना गया है। आचार्य श्री जिनसेन स्वामी ने संस्कृत भाषा में सहस्त्रनाम स्तोत्र रचा। एक प्रकार से यह भगवद् नाममाला है। भगवान् का नाम लेने से जीव भयहीन एवं बंधनमुक्त हो जाते हैं।

आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माताजी ने सहस्त्रनाम स्तोत्र का पद्यानुवाद कर जहाँ भगवान् के विभिन्न नामों की सार्थकता को भी बताया है और इसमें सहजता का भी ध्यान रखा है। उदाहरण स्वरूप यह पद्य देखिए -

हो दिव्य भाषा पूतशासन , दिव्य पूतात्मा बने।
हे पूतवाक हे परम ज्योति , श्रीपति भगवन बने।।
धर्म के अध्यक्ष शुचि, अर्हन्त दम ईश्वर बने।
केवली अरजा हो विरजा, तीर्थंकृत अर्हन् बने ।।1।।

इस पद्यानुवाद की यह भी विशेषता है कि इसमें अनुप्रास का लालित्य प्रचुर मात्रा में है। जैसे- ''पति पितामह पिता हो पाता'', ''महायशा महासत्व महोदय'', ''वृहद बृहस्पति वाग्मी वाचस्पति'' आदि।

नाम प्रभु का लेने से, कटते पाप हजार।
इसीलिए निशदिन पढ़ों , छूटे कर्म प्रहार।।

3 एकीभाव स्तोत्र-

महाकवि आचार्य श्री वादिराज द्वारा विरचित एकीभाव स्तोत्र में 26 श्लोक हैं। 25 श्लोक मन्दाक्रान्ता छंद में और 1 स्वागता में, इस स्तोत्र में भक्ति भावना का महत्व प्रकशित किया है। आचार्य ने स्तोत्र के आरंभ में ही कहा है-

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो
घोर दुःखं भव-भव -गतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः॥

हे भगवान्! आपकी भक्ति जब भव-भव में एकत्रित दुःखदायी कर्मबन्ध को तोड़ सकती है, तब अन्य शारीरिक संताप का कारण उससे दूर हो जाये, तो इसमें क्या आश्चर्य है?

आचार्य श्री वादिराज विरचित इस एकीभाव स्तोत्र के हिन्दी पद्यानुवाद को आर्यिका स्वस्तिभूषण माता जी ने करके इसे जनग्राह्य बनाया है और भक्त की सरलता से सरलता के साथ प्रस्तुत भी किया है। यथा11वां पद्य देखों-

जनम-जनम में तरह-तरह के, दुःख नाथ मैंने पाये ।
शस्त्र घात सम याद से लगता, तुम्हें प्रभु क्या बतलायें ।
सबके स्वामी नाथ दयालु, शरण आपकी आया हूँ,
जो कुछ करना आप देखिये, मैं तो शीश झुकाया हूँ।।

मूल रचयिता के प्रति यह विनयांजलि महत्त्वपूर्ण है-

शब्द लोक के ज्ञाता हैं, हैं ये न्यायाचार्य।
काव्यकार भी आप हैं, भव्य, रक्ष आचार्य।।

माता जी कृत यह पद्यानुवाद उत्तम है, वैदुष्यपूर्ण है, काव्यानंद में सक्षम है।

4. विषापहार स्तोत्र-

विषापहार स्तोत्र के रचयिता महाकवि धनंजय हैं। महाकवि धनंजय के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में विशेष तथ्यों की जानकारी उपलब्ध नहीं है। द्विसन्धानमहाकाव्य के अंतिम पद्य की व्याख्या में टीकाकार ने इनके पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। कवि गृहस्थधर्म और गृहस्थोचित राष्ट्रकर्मों का पालन करता था। इनके विषापहार स्तोत्र के संबंध मे कहा जाता है कि कवि के पुत्र को सर्प ने डस लिया था, उस सर्पविष को दूर करने के लिये ही इस स्तोत्र की रचना की गयी है। भक्तिपूर्ण 39 इन्द्रवज्रा वृत में लिखा गया यह स्तुति परक काव्य है।

आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी ने विषापहार स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद कर संसार-विष के अपहरण/विसर्जन का भाव अभिव्यक्त किया है। भाव भी अमृत भरे हैं और शब्द भी;यथा-

आप सभी को देखों पर, सब तुमको देख नहीं पाते।
आप सभी को जानो पर ,सब तुमकों जान नहीं पाते।।
कितने और कहाँ पर हो प्रभु ,कहा नहीं जा सकता है।
नहिं सामर्थ्य करूँ मैं स्तुति, रहा नहीं जा सकता।।4।।

आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माताजी ने अपने पद्यानुवाद-प्रयोजन को इन दो पंक्तियों मे प्रस्तुत करना इस पद्यानुवाद की विशेषता है।

5. श्री जिन चतुर्विंशतिका स्तोत्र-

संस्कृत कवि भूपाल विरचित श्री जिन चतुर्विंशतिका स्तोत्र का पद्यानुवाद आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी ने किया है। इसमें कुछ 26 पद्य हैं। यह भावप्रधान रचना है-

प्रभु हैं प्रशंसा योग्य, और स्वभाव भी सुंदर।
नख चन्द्र में जो मुख को देखे, सौख्य समंदर।।
वो भव्य धैर्ये लक्ष्मी, यश कान्ति भी पाये,
मंगल प्रभु मंगल करे, प्रभु गीत को गाये।।16।।

इस स्तोत्र में अष्ट प्रातिहार्य तथा जन्माभिषेक आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है।

6. दशभक्ति -

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत भाषा में 10 स्तुतियाँ लिखी हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं- (1) सिद्धभक्ति (2)श्रुतभक्ति (3)चारित्रभक्ति (4) योगिभक्ति (5) आचार्यभक्ति (6)पंचगुरुभक्ति (7)तीर्थंकरभक्ति (8)शान्तिभक्ति (9)समाधिभक्ति (10)निर्वाणभक्ति (11)नन्दीश्वरभक्ति (12)चैत्यभक्ति । ये संख्या में 12 हैं किन्तु तीर्थकर भक्ति एवं समाधि

भक्ति का अन्य भक्तियों में समावेश हो जाने के कारण ये दस भक्ति के रूप में ही प्रसिद्ध हैं।

इनदश भक्तियों का हिन्दी पद्यानुवाद आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी ने किया है। यह पद्यानुवाद बेजोड़ है। सिद्ध भक्ति से सिद्धों के स्वरूप का परिचय मिलता है;यथा-

सिद्ध प्रभु इस लोकालोक को, जानें देखें एक समय।
फिर भी पाते आत्म सुखों को, अपर ज्योति है ज्योतिर्मय।।
मोह अंध को नाशा प्रभु ने, सब प्राणी संतुष्ट किया।
सबके स्वामी संचित ज्ञान से, जन-जन का है भला किया।।

सिद्धभक्ति, ईर्यापथ भक्ति, चैत्त्य भक्ति, चारित्र भक्ति, आचार्य भक्ति पंचमहागुरु भक्ति, शान्तिभक्ति, समाधि भक्ति का सांगोपांग पद्यानुवाद माता जी ने किया है। ईर्यापथ भक्ति का यह पद्य गृहीत मिथ्यात्व से दूर ले जाने में समर्थ है-

जन्म मरण से छूटना हो, प्रभु चरणन को ध्यायें।
सच्चे प्रभु न यदि मिलें , और कहीं ना जायें ।।15।।
अन्न यदि खाने न मिले, विष को न खाये।
सच्चे देव न मिल पाये, और कहीं क्यों जाये।।16।।

इस तरह माता जी द्वारा रचित यह सभी पद्यानुवाद मूल रचनाकारों की भावनाओं की रक्षा करते हैं; साथ ही अनुवाद की मौलिकता को भी अभिव्यक्त करते हैं। विचार वह बीज है जिससे विकास के वृक्ष उगते हैं। विश्व में जितनी क्रांतियाँ हुई हैं उनके अंकुर विचारों से ही प्रस्फुटित हुए हैं। विचारों से ही सद् और स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होता है कविता का विषय हृदय की अनुभुति का प्रस्फुटन है। जिसके परिणाम मुक्ति के इच्छुक हैं उनकी अनुभूतियों में भगवान् का नाम और स्वरूप सदा रहता हैं। संसार को देखकर जहाँ वे विरक्त होते हैं वहीं भगवान की वीतरागता

देखकरआसक्त और गुणानुरागी भी। यह गुणानुराग रचनाकार के लिए स्तोत्र रचने, गुनगुनाने के लिए प्रेरित करता है , आत्मसुख भी देता है। अत: आत्म सुख के इच्छुक जनो को इस स्तोत्रों,भक्तियों का पाठ करना चाहिए।

मेरा माता जी से निवेदन है कि एक संस्करण भले ही मात्र पद्यानुवादो का प्रकाशित हो जाये किन्तु भावी संस्करण मूल के साथ (आमने-सामने के पृष्ठों पर) प्रकाशित किया जाए ताकि संस्कृत भाषा को भी संरक्षण मिलें और हिन्दी को भी हमें गर्व है मूल स्तोत्रों, भक्तियों के रचयिता आचार्यों एवं कवियों पर और गर्व है आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण जी पर;जिन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा को भक्ति रचनाओं से जोड़ा और अपने 'स्वस्ति-भूषण ' नाम को सार्थक किया। मैं आभारी हूँ ब्र.शालू दीदी, ब्र. प्रियंका दीदी एवं सहृदय अभिन्न बंधु पं. अशौक शास्त्री, इन्दौर के;जिन्होने मुझे भूमिका लेखन के लिए प्रेरित किया और इतने गहन, मननयोग्य पद्यानुवादों से परिचित होने का अवसर दिया है ।

परम वंदनीय आर्यिका श्री स्वस्तिभूषण माता जी को वंदामि एवं श्री संघस्थ क्षुल्लिका 105 अर्हतमति माता जी को इच्छामि

'स्वस्ति' के स्तोत्र ये 'भूषण है' जग माँहिं।
जिनके मन में भक्ति है , उनके हैं जग नाँहिं।।
'मुनिसुव्रत' की शरण मे, विकसित 'स्वस्ति धाम '।
है 'जहाजपुर' बन गया, उपवन 'स्वस्ति धाम'।।

~~***~~

पूज्य माता जी मंचन का नवनीत हैं ये कृति

जिन शासन में भक्ति को मुक्ति-मुक्ति प्रदायिकी कहा गया श्रावक धर्म में तो भक्ति का महात्मय सर्वातिशायी है ही, इसके अतिरिक्त अनगार मुनिवरों के षट् आवश्यकों कें अंतर्गत भी स्तुति और वन्दना में भक्ति की महत्ता स्वीकृत है। भक्ति में निरत भक्त के भगवान से अभेद हो जाता है। आचार्य मानतुंग स्वामी तो भक्तामर में कहते हैं कि हे प्रभो;आपके गुणों की स्तुति करने से यदि भक्त आपके तुल्य बन जाता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भक्ति में भक्त आपके तुल्य बन जाता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भक्ति में अर्हम् का विसर्जन हो जाता है और सम्यक् विनय का विकास होता है।

भक्ति आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का उपक्रम है। श्रावक धर्म की आधार भित्ति है दृढ़ विश्वास, घोर आस्था, अनन्य समर्पण , बहुमान भाव, गुणानुराग, गुण कीर्तन , प्रशस्तराग आदि भक्ति के प्रकारांतर है, सम्यक्ज्ञान और सम्यक चारित्र की सिद्धि का सोपान भक्ति ही है।

भक्ति के अभाव में ज्ञान की और न ही चारित्र की उत्पत्ति संभव है।

अन्य धर्मों/सम्प्रदायों में स्तोत्र साहित्य उपलब्ध है तो दिगम्बर श्रमणाचार्यों ने भी आराध्य के प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट करने के लिए रसासिक्त उच्च कोटिक स्तोत्रों / स्तुतियों/स्तवनों की रचना की है। जिनमें एकतः श्रुत कोष में अपार वृद्धि हुई है, अपरतः शोभा भी समृद्ध हुई है। इन जिनस्तोत्रों में अपूर्व माधुर्य है, रस को छलके शीकर है, शब्द और अर्थ के चमत्कार है, अलंकारों की छटा है, वाणी का वैदग्ध्य है: पद व्यालिप्त है, समर्पण भावों की सरिता का प्रवाह है ।

जैन स्तोत्र साहित्य विश्व वाडमय की अतुल्य संपदा है । ये हमारे धार्मिक जीवन के अविभाज्य अंग है। इन स्तोत्रों की भक्ति गंगा में

अवगाहन करने से पाप, ताप शांत हो जाता है, अपूर्व ताजगी/स्फूर्ति की अनभुति होती है। आत्म विश्वास दृढ़ हो जाता है। हृदय आनंद से परिपूर हो जाता है और पुण्य को संचित कर लेता है।

जैन स्तोत्रों में भक्तामर, कल्याण मंदिर , एकीभाव, विषापहार, जिनचतुर्विंशति का सहस्त्रनाम इन सभी स्तोत्रों का अच्छा सम्मान है। उसका कारण रचना-सौन्दर्य तो है ही पर प्रायः प्रत्येक स्तोत्र से कुछ दैविक फल प्राप्त होने का चमत्कार भी है।

स्व. पर कल्याणक निरत साधक और विद्वान और उनका कृतित्व प्रशंस्य, अभिनन्द और स्तुत्य हुआ करता है।

इस परम्परा में अभीक्षण ज्ञानोपयोगी, वात्सल्य रत्नाकर, ज्ञान और ज्ञानियों में सत्कारी परम पूज्या आर्यिका रत्न श्री स्वस्ति भूषण माता जी जैनाचार्य प्रदत्त निधि के संरक्षण और संबर्द्धन में सतत् निरत् रहती है। अनेक विद्वतापूर्ण, कृतियों विधानों ओर आर्यिका श्री प्रणेता हैं। पूज्या माताजी की सकल रचनाये वैराग्यवर्द्धक है, विद्वता की कसौटी। पूज्या माताजी द्वारा माताजी द्वारा सम्पादित प्रस्तुत है कृति जिनेन्द्र भक्तो पर इनकी करूणा का प्रतीक है, प्रसाद है और इनके सतत् स्वाध्याय मंथन का नवनीत है। निश्चित ही साहित्य जगत् में प्रस्तुत कृति भी पूर्व रचनाओं की भाँति समाहित होगी। ऐसा विश्वास है पूज्या माताजी के पाद पद्मो में सादर सश्रद्धा वन्दामी-वन्दामी-वन्दामी। ब्र.तरूण ''इंदौर''

पद्यानुवाद का रचनाकाल

स्तोत्र का नाम	**प्रारंभकाल**	**समापनकाल**
सहस्त्रनाम नाम जी	22 -5-18	28-5-18
वृहत्वस्वयंभूस्त्रोत	08-12-18	12-12-18
एकीभाव स्त्रोत	27-10 -18	29-10-18

विषापहार स्त्रोत	29-10-18	एक ही दिन में
श्री जिन चतुर्विंशतिका स्त्रोत	31-10-18	एक ही दिन में
ईर्यापथ भक्ति	31 -10-18	एक ही दिन में
सिद्ध भक्ति	2-11-18	एक ही दिन में
चैत्य भक्ति	2-11-18	एक ही दिन में
चारित्र भक्ति	3-11-18	एक ही दिन में
योगि भक्ति	3-11-18	एक ही दिन में
आचार्य भक्ति	4-11-18	एक ही दिन में
पंच महागुरु भक्ति	4-11-18	एक ही दिन में
शान्ति भक्ति	4-11-18	एक ही दिन में
समाधि भक्ति	5-11-18	18-12-18

~~***~~

भगवान महावीर का अनेकान्त धर्म

– आ.१०५ स्वस्ति भूषण

भगवान महावीर ने जिस धर्म का व्याख्या की है वह अनेकान्तमयी है। किसी भी वस्तु का कथन अनेकान्त से ही समझी जा सकती है। जैसे एक हाथी को अंधे पुरुष देखेंगे तो हाथी का एक-एक अंग कथन को एकत्रित किया जाये तब हाथी की पूर्ण व्याख्या होगी । इसी तरह भगवान महावीर ने धर्म को अनेकान्तमयी बताया है। जिसमें भक्ति भी है, सेवा भी है, ध्यान भी है, स्वाध्याय भी है, तपस्या भी है, मूर्ति पूजा भी है, ध्यान भी है, स्वाध्याय भी है, तपस्या भी है। मूर्ति पूजा भी है। जिसमें गुरु की भक्ति भी है, दान भी है। आत्मा और परमात्मा की उपासना भी है। तब कही जाकर धर्म की पूर्णता होती है।

यदि प्रभु भक्ति धर्म है तो गुरु भक्ति धर्म क्यों नहीं होगी,गुरु भक्ति भी धर्म है। यदि तपस्या धर्म है तो ज्ञान के बना तप अधूरा है , अतः ज्ञान भी धर्म है। ध्यान धर्म है तो बिना ज्ञान दान के बिना ध्यान मे क्या करोगे। यदि मूर्ति पूजा धर्म है तो बिना दान के मंदिर कैसे बनेंगे। अतः दान भी धर्म है। ये सभी साधना और उपासना के आया है इन सभी के द्वारा आत्मा को पवित्र बनाया जाता है। जीवन काल में समय -समय पर परिस्थितियों के अनुसार सबके द्वारा धर्म की साधना की जाती है। तब कहीं जाकर मंजिल पर पहुंचा जा सकता है।

हमारी मंजिल है मोक्ष। मोक्ष का रास्ता है, 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः। ' अर्थात सम्यक श्रद्धा , सम्यक ज्ञान, और सम्यक चारित्र की एकता मोक्ष मार्ग है और जो इस पर चलेगा वह मुक्ति मंजिल में पहुंचेगा। मुक्ति का मतलब है दौबारा वापस नहीं आना, अनंतकाल के लिये अनंत सुख का पान करते हुये ,विश्राम करना। जहां जीव अकेला है कर्म और युदगल नहीं है।

~~***~~

भक्ति मार्ग

धर्म करने के लिये भक्ति मार्ग भी एक रास्ता है, जिसमें परमात्मा के गुणों का गुणगान किया जाता है। परमात्मा गुणों का गुणगान करने से मन शुभ भावों में प्रवृत्त होता है, अशुभ से निवृत्त होता है। पापों का संवर का होता है पुण्य का आस्त्रव। कल्याण मंदिर स्तोत्र में आ. कुमुद चंद्र स्वामी कहते है-

ज्यों ही चंदन के तरूवर पर, नीलकंठ आ जाते है।
महाभुजंगम के बंध भी , झट ढीले पड़ जाते है।।

अर्थात् भगवान की सच्ची भक्ति दिल से करने पर कठिन से कठिन पाप कर्म छूट जाता हैं। बहुत सारे उदाहरण से आप स्वयं परिचित है। (1) मैना सुंदरी ने सिद्धचक्र विधान करके श्रीपाल सहित 500 कुष्ट रोगियों का कुष्ट रोग दूर हुआ। (2) आचार्य मानतुंग स्वामी ने आदि प्रभु की भक्ति की 48 ताले टूट गये। (3) सोमा के नाग का हार बन गया। (4) सीता के अग्नि का नीर बन गया। (5) बैल ने णमोकार मंत्र सुना तो सुग्रीव बन गया। एक अनेकों उदाहरण है भूतकाल में भी और वर्तमान में भी। भगवान की भक्ति से पाप ऐसे दूर होते है जैसे- सूर्य के निकलने पर अंधेरा दूर होता है।

श्रावक के और साधु के षट आवश्यक में पूजा और स्तुति वंदना अनिवार्य कही है। श्रावक को बिना पूजा के भोजन नहीं करना चाहिये और साधु को बिना स्तुति वंदना किये आहार नहीं लेना चाहिए। ऐसा भगवान महावीर ने कहा है। जब तक परमात्मा की भक्ति नहीं करोगे तब तक मन की विशुद्धि की पूर्णता नहीं होती है।

~~***~~

भगवान हमारे आदर्श है।

परमात्मा हमारे आदर्श है, आदर्श के प्रति भक्ति होना स्वाभाविक है। आदर्श हमारे रोम-रोम मे बसे होते है, उनका नाम ही हमे श्रद्धा से भर देता है। कोई अनजान व्यक्ति भी यदि हमारे आदर्श का नाम ले-ले तो हम उसके प्रति आकर्षित हो जाते है। ऐसे आदर्श की भक्ति नहीं करनी पड़ती,हो जाती है। जैसे कवि धनंजय-पूजा वे किसी किताब को देखकर नही करते थे वो भाव विभोर होकर गाते जाते और पूजा होती जाती थी। जिनके प्रति हमारा मन भावों से भरा होता है उनके लिये शब्द लाने नहीं पड़ते स्वयं आ जाते है। ऐसी भक्ति अनंत पापों का नाश करती है।

आचार्य मानतुंग स्वामी जी का भक्तामर,आचार्य कुमुद चंद्र स्वामी का कल्याण मंदिर स्तोत्र,आचार्य पूज्यपाद स्वामी की दशभक्तियां, आचार्य जिनसेन जी जिन सहस्रनाम,आचार्य संमत भद्र स्वामी का वृहत्स्वयंभू स्तोत्र, आचार्य वादिराज मुनिराज का एकीभाव स्तोत्र भक्ति के भावो से भरा पड़ा है। विद्वान तपस्वी ज्ञानी आचार्यों ने प्रभु की भक्ति की है। इससे ये ज्ञात होता है कि प्रभु की भक्ति कितनी शक्तिशाली है। भगवान की भक्ति से क्या उपलब्ध होता हे ये उनसे ज्ञात होता है। कवि धनंजय के बेटे को सर्प ने डस लिया तब धनंजय भक्त ने ऐसी भक्ति की कि वह विषापहार स्तोत्र बन गया। कवि भूपाल जी ने भक्ति की वह चतुर्विंशतिका है। बडे-बड़े ज्ञानी भी परमात्मा की भक्ति करते है। कैसे करते है कोई उनसे सीखे। अपने आदर्श के लिये भक्त के मन मे क्या भाव होते है उन्होने उसे व्यक्त किया है।

संस्कृत मे लिखे स्तोत्र, वर्तमान में पढ़ते समय भाव भासना नही है। क्योंकि वर्तमान की भाषा हिन्दी है और संस्कृत भाषा या तो तो पढ़ नही पाते,पढ़लें तो समझ नहीं आती। इसीलिये हमारे पास भक्ति स्तोत्र उपलब्ध होते हुये भी हम इनका लाभ नहीं ले पाते। कुछ स्तोत्रों की पुरानी

हिन्दी में अनुवाद है पर हमारे लिये तो पुरानी हिन्दी भी संस्कृत जैसी लगती है। इसीलिये भाव होते हुये भी हम उनका लाभ नही ले पाते।

एक दिन शाम भगवान मुनि सुव्रत जी के चरणों में बैठे थे, भक्ति करने का भाव था। दीदी ने पूछा, क्या पढ़ना है, मैंने कहा भक्तामर कल पढ़ा था, कल्याण मंदिर परसों पढ़ा था। अब क्या बताऊँ कुछ नया कहाँ से लाऊँ। मन कहता है नई-नई भक्ति करो। तभी प्रभु की नई ऊर्जा मेरे पास आई और मन में विचार आया कि एकीभाव स्तोत्र विषापहार स्तोत्र का पद्यानुवाद करूँ। 3-4 दिन मे ही पूरा हो गया। फिर चतुर्विंशतिका का किया। अब लगा और लिखूँ। तों आचार्य पूज्यपाद स्वामी की दशभक्तियों का पद्यानुवाद किया, अब लगाा और करूँ तो आचार्य समंतभद्र स्वामी के वृहत्स्वयंभू स्तोत्र का पद्यानुवाद किया।

एकीभाव स्तोत्र का पद्यानुवाद करने के बाद इतना आनंद आया कि मैं आगे और स्तोत्रो का करती चली गई। मन आश्चर्य से भरता जाता, लगता कि हमारे पास भक्ति का खजाना है और हम उसका लाभ ही नहीं ले रहे। करने के बाद मन में एक उत्साह था अब रोज नई-नई भक्ति करूँगी। कभी विषापहार तो कभी एकीभाव कभी स्वयंभू तो कभी दशभक्ति। जिन सहस्रनाम के पद्यानुवाद के लिये ब्र. तरुण भैया जी का आग्रह था कि सहस्रनाम अभी गा के नहीं पढ़ा जा सकता, इसीलिये आप इसका पद्यानुवाद अवश्य करें। मैंने देखा, भगवान के नाम बड़े-बड़े इन्हें पद्य में कैसे सेट करूँ। फिर भी कोशिश की है और पद्यानुवाद करके आनंद आया। ब्र. तरूण भैया जी को इस बात के लिये बहुत-बहुत आशीर्वाद। क्योंकि अब लोगों को सहस्त्रनाम पढ़ना सरल हो जायेगा बहुत लोग इच्छुक थे कि सहस्रनाम पढ़ें पर संस्कृत में होने की वजह से नही पढ़ पाते थे। अब उनकी ये शिकायत भी दूर हो गई।

संघस्थ शालू दीदी ने इस किताब के छपने में बहुत प्रयास किया

ब्र.प्रियंका दीदी ने लिखने में पूरी अनुकूलता प्रदान की,और ब्र.गुंजा दीदी ने प्रुफ रीडिंग करके सहयोग। सबको बहुत–बहुत मंगल आशीर्वाद छोटी माताजी अर्हंत मति माताजी भी ये सब कार्य होते हुए देखकर प्रसन्न होती थी जब लिख रही थी। वीतरागी निष्पृही उत्तम आचार्य भगवान की भक्ति कैसे की। उन स्तोत्रों को पढ़कर आप भी अपने भावों को उत्कृष्ट बनाये।

– **आर्यिका 105 स्वस्ति भूषण माताजी**

~~***~~

अनुक्रमणिका

क्र.स.	विषय सूची	पेज नं.
1.	श्री एकीभाव स्तोत्र	02
2.	श्री विषापहार स्तोत्र	07
3.	जिन चतुर्विंशतिका स्तोत्र	15
4.	वृहत्स्वयंभू स्तोत्र	20
5.	श्री सहस्त्रनाम स्तोत्र	51
6.	दस भक्तियाँ	55
7.	ईर्यापथ भक्ति	70
8.	सिद्ध भक्ति	74
9.	चैत्य भक्ति	78
10.	चारित्र भक्ति	84
11.	योगि भक्ति	87
12.	आचार्य भक्ति	90
13.	पंचमहागुरु भक्ति	94
14.	शांति भक्ति	96
15.	समाधि भक्ति	100
16.	श्री नंदीश्वर भक्ति	103
17.	परिचय–अतिशय तीर्थक्षेत्र स्वस्तिधाम, जहाजपुर	110

~~***~~

।। सब व्याधियों को दूर करने वाला मंत्र ।।

एकीभाव स्तोत्र परिचय

परम वीतरागी आचार्य वादिराज मुनिराज की ये नाम नहीं पदवी है क्योंकि वे वादियो को क्षण में जीत लेते थे ।एकीभाव स्तोत्र संस्कृत के रचियता आचार्य वादिराज मुनिराज है। आपकी अनेक रचनायें है। आप महान कवि थे। आपका समय विक्रम 11वीं शताब्दी माना जाता है चौलुक्य नरेश जयसिंह (प्रथम) की सभा में आपका बहुत सम्मान था।

क्यों रचा स्तोत्र

वादिराज मुनिराज को कुष्ट रोग हो गया, पर वे आत्मा के ध्यान में लीन रहते थे। कुछ द्वेषी लोगों ने राजा से कह दिया कि जैन मुनि कुष्टी होते है ऐसा उपहास किया। जैन धर्म प्रेमी राजश्रेष्ठी से सहन न हुआ और उन्होने कह दिया,जैन मुनि की काया स्वर्ण समान चमकती है राजा ने दूसरे दिन दर्शन की प्रोग्राम बनाया। तब श्रेष्ठी को चिन्ता हुई, उन्होने महाराज से जाकर चिन्ता व्यक्त की। तब वादिराज मुनिराज ने प्रभु भक्ति की जो एकीभाव स्तोत्र बना, उसमें बीच में एक लाईन आती है कि-

पढ़ते ही, हाथ, शरीर पर फेरा को काया स्वर्ण के समान चमकने लगी। राजा ने मुनिराज दर्शन किये तो चुगलखोरो को दंड दिया। पर मुनिराज ने सब कुछ समझाकर उन्हें मुक्त कर दिया। एकीभाव स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करने से व्याधियां दूर होती है और मनवांछित फल प्राप्त होता है ।

***

।। एकीभाव स्त्रोत ।।

।। हिन्दी पद्यानुवाद ।।

(परम विदुषि लेखिका रत्न 105 श्री स्वस्ति भूषण माताजी)

शंभु छंद

हे जिनेन्द्र तेरी भक्ति, भव भव के कष्ट मिटाती है।
एकीभाव को प्राप्त कर्म, कर्मों का बंध छुड़ाती है।।
नही दूसरा कारण जग में, जो सन्ताप को दूर करें।
तेरी भक्ति शक्ति शाली, कठिन दुखों को शीघ्र हरें।। 1।।

ज्योति रूप जिन पाप अंधेरा, नाश करन में कारण हो।
गणधरादि चिरकाल आपको, माने दुःख निवारण हो।।
हे प्रभु मेरे मन मंदिर में, आप प्रकाश को करते हो।
पाप तिमिर फिर ठहर सके ना, पाप रूप तम हरते हो।। 2।।

आनंद अश्रु गद् गद् हो जो, मुख प्रक्षालित करता है।
स्थिर मन से पूजा स्तुति, मंत्र जाप जो करता है।।
रोग रूपी सर्पों का डेरा , दूर शीघ्र की भग जाता।
विष व्याधि भक्ति से प्रभु की, दूर करे वह सुख पाता।। 3।।

भव्य जीव जब स्वर्ग लोक सें, मात गर्भ में आता है।
भू मंडल को किया स्वर्णमय, हे प्रभु तुमको ध्याता है।।
ध्यान रूपी द्वारे से भगवन, मन मंदिर में आये हो।
इस शरीर को स्वर्णिम कीना,आश्चर्य क्या दिखलायें हो।। 4।।

बिना प्रयोजन आपहि जग के, बंधु का हित करते हो।
हो सर्वज्ञ चराचर जानो, शक्ति ज्ञान की भरते हो।
मन की पावन शैया पर प्रभु, आप निवास ही करते हो।
मुझमें जो दुख का समूह है, सहन उसे क्यों करते हो।। 5।।

हे स्वामी मैं बहुत काल से, जग जंगल में भटक रहा।
स्याद्वाद पीयूष बावड़ी, पाकर उसमे नहा रहा।।

चंद्र बर्फ से शीतल वापी, बीच वास तुम करते हो।
दुख दावानल से संतापित, ताप को क्यों ना हरते हो।। 6।।

तीनों लोक में कर विहार, पग जहाँ आप रख देतें हो।
स्वर्णिम कमल सुरभि भी फैले, लक्ष्मी ग्रह वर देते हो।।
हे स्वामिन इस मन के द्वारा , सर्व अंग स्पर्शित है।
कौन सा वह कल्याण मेरा जो, अपने आप न अर्पित है।। 7।।

कर्म रूपी जंगल को तज प्रभु, आनंद धाम में पहुँच गये ।
दुष्ट कर्म के मद को हरकर, निर्विकार निश्चिंत्य भये।।
भक्ति भाव से प्रभु वचनामृत , जो भी भविजन पीते हैं।
ऐसे पुरुष को रोग के कांटे , तन में कभी ना चुभते हैं।। 8।।

मानस्तंभ रत्न पत्थर का, बना किन्तु सब एक सें हैं।
उसमें शक्ति आती आपसे, मान हरण में विशेष रहे।।
अब स्पष्ट हुआ है प्रभुवर, बिना आपके कुछ ना है।
चरण शरण मे समीप रहे हो, उसके पास में सब कुछ है।। 9।।

प्रभु तन को जो वायु छूती वह औषध बन जाती है।
रोग रूपी धूली को शीघ्र ही, भगा स्वस्थ कर जाती है।।
जिसने हृदय बुलाया प्रभु को, मन वेदी में राज रहे।
उपकारी ऐसे सज्जन का ,बचा कौन सा काज रहे।। 10।।

जनम-जनम में तरह-तरह के, दुःख नाथ मैंने पाये।
शस्त्र घात सम याद से लगता, तुम्हें प्रभु क्या बतलायें ।।
सबके स्वामी नाथ दयालु, शरण आपकी आया हूँ।
जो कुछ करना आप देखिये ,मैं तो शीश झुकाया हूँ।। 11।।

मृत्यु समय जीवक ने श्वान को, सुना मंत्र नवकारा था।
पाप प्रवृत्ति करने वाला, श्वान देव तन धारा था।।
मणिमाला ले नाम आपका, भक्त जो निशदिन जपता हैं।
इसमें क्या आश्चर्य बचा कि, इन्द्र विभूति को पाता हैं।।12।।

शुद्ध ज्ञान निर्मल चारित संग, भक्ति आपकी जो करता।
सुखों की कारण भक्ति कुंजी, मोक्ष द्वार भी खुल जाता ।।
यदि खुले ना तो ये समझना, मोह मुहर बंद ताला है।
करो पुरूषार्थ यही पे खुलेगा, जगत मोह का जाला है।।13।।

मुक्ति मार्ग निश्चय ही प्रभु जी, अंधकार से ढंका हुआ।
दुख रूपी गहरे गड्ढे हैं, चलूं मैं कैसे नहीं दिखा।।
प्रभु वाणी के तत्व ज्ञान का , दीप न आगे-आगे हो।
कौन मनुज मुक्ति पथ चाले,प्रभु बिना ना जागे वो।।14।।

कर्म पटल से ढँकी आत्मनिधि , आनंद में निज कारण है।
अज्ञानी को मिले कभी ना, ज्ञानी को भव तारण हैं।।
भक्ति रूपी कुदाली से जो, खोद आत्म धन पाते हैं।
सुख समृद्धि ऋद्धि सिद्धि ,पाकर के तर जाते है।।15।।

हिमगिरी रूपी प्रभु नय गंगा, मुक्ति सिन्धु में जाती है।
बड़े भाग्य से मिली प्रभु भक्ति , मन के मैल को धोती है।।
प्रभो प्रेम में डूबा आतम, अंतः करण को साफ करें।
इसमें नही संदेह है कोई, प्रभु भक्ति ही पाप हरें।।16।।

शिव सुखवासी ध्यान आपका, करत भाव से लगता है।
तुम सम मैं हूँ, यदपि झूठ है, तदपि तृप्ति को वरता है।।
दोष सहित भी पुरूष आपका, भक्ति में यदि रमता है।
मनवांछित फल उसको मिलता,आती उसमें समता है।। 17।।

सप्तभंग की लहरें प्रभु के, वचन सिन्धु से उठती है।
मिथ्यावाद एकांत रूप तज, मिथ्यामल को हरती है।।
मन सुमेरू को मथकर, ज्ञानी , सम्यग्ज्ञान में वास करे।
सुर सम अमृत के सेवन से, निज आतम में तृप्त रहे।।18।।

जो स्वभाव से हो कुरूप, वह वस्त्राभूषण पहनेगा।
शत्रु से डरने वाला भी, अस्त्र शस्त्र को रख लेगा।

किन्तु प्रभो सर्वांग से सुंदर, वस्त्राभूषण छोड़ दिये।
शत्रु ने जग में कहीं तुम्हारा,अस्त्र शस्त्र भी नहीं लिये।।19।।

इन्द्र तुम्हारी सेवा स्तुति, अच्छी तरह से करता है।
नहीं प्रशंसा इसमे आपकी ,पुण्य वो संचय करता है।।
जगत सिन्धु से तारण हारे, मुक्ति वधू के नाथ बने।
हे त्रिलोक के अधिपति स्वामी, भक्ति के तुम बंधु बने।।20।।

वचन हमारे दूजे के सम, बस अल्पज्ञ हो सकते।
नही दूसरा तुमसा कोई, तुलना जिससे कर सकते।।
भक्ति मेरी प्रभो आप तक, पहुँच नहीं क्यों पाती है।
नही कष्ट वह कल्पवृक्ष सम, भव्यों के मन भाती है।। 21।।

नही क्रोध ना खुश ही होते, निश्चय से प्रभु स्वार्थ रहित।
उदासीन है चित्त आपका, निश्चित ही प्रभु गुणों सहित ।।
फिर भी आज्ञा सभी मानते, हैं प्रभावशाली भगवन।
बैर विरोध चरण में भूले , तीन लोक के श्रेष्ठ नमन।।22।।

सुरपति महिमा गाते आपकी, सकल पदार्थों के ज्ञाता।
मोक्ष मार्ग पर चलने वाला, भक्त भी प्रभु के गुण गाता।।
नहीं मार्ग वह टेढ़ा चलता, तत्त्व ज्ञान न भूले कभी।
मोह से मूर्छित न होता है, खुले मोक्ष के मार्ग तभी।। 23।।

सौख्य ज्ञान शक्ति दर्पण में, चार चतुष्टय धारी प्रभो।
हृदय में रख जो भक्ति करता , मुक्ति पथ वह पाता विभो।।
आदर विनय सहित की भक्ति, पंचकल्याणक देती है।
जो त्रिकाल में स्तुति करता, सर्व कर्म हर लेती है।।24।।

देव से पूजित प्रभो आपका, स्तवन कैसे हम गायें।
अवधिज्ञानी मुनिवर भी हारे, मंदबुद्धि क्या कह पायें।।
भक्ति छल से आदर हमने, प्रगट आपके द्वार किया।
आत्म सुखों के इच्छुक जन ने,कल्पवृक्ष सम सौख्य लिया॥25॥

।। दोहा ।।

शब्द लोक के ज्ञाता है, हैं ये न्यायाचार्य।
काव्यकार भी आप है, भव्यरक्ष आचार्य।।
वादि राज मुनिराज के, चरणन शीश झुकाये।
एकीभाव स्तोत्र रचा, मुनि के गुण हम गायें।।
भक्ति का आनन्द हुआ, मन सुख सागर पायें।
हिन्दी का अनुवाद कर,'स्वस्ति ' शीश झुकायें।।

***

विषाहार स्तोत्र परिचय

घर में रहकर ज्ञान और धर्म की कितनी ऊँचाईयाँ छुई जा सकती है, यह बात महाकवि धनंजय से जान सकते है। **''नाममाला''** जैसी पुस्तक की रचना उन्होंने की, जिसमें एक वस्तु के कितने नाम हो सकते है। संस्कृत श्लोक के रूप में रचना की है। उनकी द्विसंधान महान काव्य प्रशंसनीय। एक वाक्य से दो कैसे संबोधन करे,। अर्थात् लाइन को सीधी पढ़ो तो महाभारत उल्टी पढ़ो तो रामायण। इस शैली में पूरा शास्त्र लिखा है। कवि धनंजय का समय विद्वानों ने आठवीं शताब्दी निश्चित किया है।

विषापहार स्तोत्र में उन्होंने भगवान् आदिनाथ की स्तुति की है भक्ति के भाव, शब्दों का संयोजन,अनेक उक्तियां का समावेश,विचारों की गम्भीरता अंतरमन के विचारों का अमृत ही उड़ेंल दिया है विषापहार स्तोत्र की रचना क्यों हुई ?

एक बार कवि धनंजय पूजा करने में लीन थे। घर में उनके पुत्र को सर्प ने डस लिया। पत्नि ने कई बार समाचार भेजे,किन्तु पूजा में इतने तन्मय थे कि उन्होने सुना ही नहीं। पुत्र को विष चढ़ रहा था। पत्नि का क्रोध बढ़ रहा था,उसी क्रोध में मन्दिर में ही पत्नी ने पुत्र लेकर वहाँ उनके सामने रख दिया। पूजा समाप्त होने के उपरान्त उन्होने देखा तो फिर प्रभु की स्तुति प्रारंभ की, इधर स्तुति चल रही थी, वहां विष उतर रहा था। गंधोदक के छींटे लगाये, स्तोत्र पूरा हुआ। बालक ऐसे उठके बैठा,जैसे के सो के उठ बैठा। इस जिनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई और प्रभु की सच्ची भक्ति करने की प्रेरणा मिली।

***

।। विषापहार स्तोत्र ।।

।। हिन्दी पद्यानुवाद ।।

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माताजी)

।। शेर चाल ।।

ऋषभ प्रभु को नमन, कर, भक्ति भाव मन लाय।
भक्तों के हो परम गुरु, शत् शत् शीश झुकाय।।

।। शंभू छंद ।।

आत्म स्वरूप में स्थिर होकर, सर्व में व्याप रहें जिनदेव।
सब व्यापार के जानकार हो, नहीं परिग्रह है जिनदेव।।
दीर्घ आयु वाले होकर भी, नही बुढ़ापा आता है।
श्रेष्ठ पुरूष हो, हो पुराण प्रभु,जगत दुखों से बचाता है।। 1।।

कर्म भूमि के आदि भार को, एक आप धारण कीना।
हे अचिन्तय श्री ऋषभ नाथ जी, पूर्ण भक्ति गुरु ना कीना।।
ऐस प्रभु की स्तुति करने, क्या मैं योग्य नही प्रभु जी।
जहां सूर्य ना होवे जग में, दीप प्रकाश करें प्रभु जी।। 2।।

इन्द्र गर्व को छोड़ प्रभु जी, स्तुति तेरी करता है।
मैं अल्पज्ञ गर्व ना छोड़ा, भक्ति भाव को धरता है।।
जैसे झरोखे से झाँके तो, थोड़ा ज्ञान तो हो जाता है।
थोड़े ज्ञान से भक्ति करता, आनंद झरना बह जाता।। 3।।

आप सभी को देखों पर, सब तुमको देख नही पाते।
आप सभी को जानों पर, सब तुमको जान नहीं पाते।।
कितने और कहां पर हो प्रभु, कहा नही जा सकता है।
नहि सामर्थ्य करूँ मैं स्तुति, रहा नही जा सकता है।। 4।।

मैं बालक अपराध किये हैं, बाल वैद्य बन समझाते।
दुख में पीड़ित भक्त जनों का, कष्ट आप ही हरवाते।।
भले बुरे का ज्ञान कराते,सत्य राह दिखलाते हो।
क्षमा करों प्रभु दया करो, तुम वत्सल भक्त कहाते हो।। 5।।

दाता हरता नही सूर्य है, बस यूँ ही बहलाता है।
आज मैं दूंगा या कल दूंगा, बस आशा दिखलाता है।
किन्तु प्रभो चरणों की तेरे, भक्ति जो भविजन करते।
मनवांछित फल मिलता उनको,कष्ट दुखों को भी हरते।।6।।

कहा आपका माने जो भी, वह तो सुख का पाता है।
जो माने ना बात आपकी, वह तो दुःख बुलाता है॥
किन्तु आप दोनों के आगें, दर्पण के सम झलक रहे।
उज्जवल कांति रूप आपका,दर्श को यह मन ललक रहे।।7।।

सिन्धु है गहरा सुमेरू ऊँचा, पृथ्वी गगन, विशाल कही।
पर प्रभु की गहराई उन्नत, जग में सबसे विशाल सही।।
प्रभु का हृदय विशाल है इतना, तीनों लोक समा जाये।
भक्त विशाल बने उन्नति हो, चरणों में विनती गायें।। 8।।

है सिद्धांत द्रव्य परिवर्तन, यह संदेश दिये तुमने।
किन्तु मुक्ति से लौट न सकते, यह उपदेश दिये तुमने।।
इह भव सुख तज, परभव चाहे, है विपरीत ये बात कही।
किन्तु उचित है नय से जानों,जिनवर की हर बात सही।।9।।

कामदेव को तुमने प्रभुजी, अच्छी तरह से भस्म किया।
अन्य देव भी नहीं कर पाये हैं, प्रभु ने आतम ध्यान किया।।
नहीं देवियों के द्वारा मन, कभी आपका डिगता है।
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, दोष दूर ही भगता है।। 10।।

दोष दूसरों के कह करके, बड़े आप तो नहीं बने।
सिन्धु बड़ा होता है स्वयं ही, तब तालाब की स्वयं कहे।।
त्याग बड़ा है, ध्यान बड़ा है, महिमा आपकी बड़ी-बड़ी ।
तीनों लोक में आप बड़े हो, गरिमा आपकी स्वयं बड़ी॥11॥

कर्म जीव को, जीव कर्म को , जगह - जगह ले जाता है।
कर्मों की स्थिति में स्थित, होकर कष्ट उठाता है।।

जलनिधि में जो नाव खेवटिया, का संबंध जो होता है।
वही जीव औ कर्म का होता, बनते दोनों नेता है।।12।।

बालक तेल की वांछा करके, बालू समूह को पेलता है।
उसी तरह अज्ञानी व्यक्ति, दोष में गुण को ढूँढता है।
पाप में धर्म को ढूंढे पापी, दुख में सुख को छानता है।
पहचाने, ना तुम्हें प्रभु जी, इससे ऐसा करता है।।13।।

विष पीड़ा के दूर करन को, मंत्र मणि औषध लाते।
प्रभु का नाम ही औषध मणि है, विष पीड़ा को हरवाते।।
प्रभु नाम का मंत्र तो जपता, जन्म जरा मृतु रोग हरे।
इह भव सुख पर भव भी सुधरे भव सागर को पार करे।।14।।

किंचित कुछ ना रखें हृदय में, आत्म ध्यान बस भरा हुआ।
किन्तु प्रभु जिस हृदय में रहते, उसने सब कुछ पाय लिया।।
बाह्य चित्त से रहित हुए प्रभु, फिर भी सुख से जीवित है।
आश्चर्य की है बात भक्त सब,सुख ही सुख तो पावत है।।15।।

तीन लोक त्रिकाल के ज्ञानी, सब पदार्थ के ज्ञाता है।
ज्ञान राज्य है अनंत आपका, उन सबके प्रभु त्राता है।।
द्रव्य त्रिलोक ज्ञान में दिखता , और ज्यादा यदि हो जाता।
वह भी ज्ञान में आये प्रभु के , ज्ञान कभी न कम पड़ता।।16।।

इन्द्र आपकी सेवा करता, इससे आपको लाभ नही।
किन्तु इन्द्र स्वयं सुख पावे, प्रभु भक्ति का लाभ यही।।
जैसे धूप में छाता लगावे, सूर्य को कुछ न मिलता है।
छाया पाकर स्वयं सुखी हो, अंतर मन सब खिलता है।।17।।

राग द्वेष से रहित आप, सुख का उपदेश क्यों देते हो।
इच्छा बिन प्रभुवर जी बोलते, भक्त को प्रिय क्यों होते हो।।
है विरूद्ध बातें प्रभु दोनों, प्रभु तुमको समझे कैसे।
छोटी बुद्धि ज्ञान है थोड़ा , समझाओ बालक जैसे।।18।।

उदार दरिद्री जो देता है, नहि धनवान से मिल सकता।
जो पहाड़ कई नदियां देता, नहि समुद्र वो दे सकता।।
आप गिरि सम ऊंचे प्रभुवर, जग को सब कुछ लुटा रहे।
जो भी सच्चा भक्त तुम्हारा, उनके दुखड़े मिटा रहे।।19।।

धर्म ध्वजा को फहराऊँगा, इन्द्र दंड धारण करता।
प्रतिहार तब इन्द्र है बनता, वह त्रिलोक सेवा करता।।
आज्ञा इन्द्र को दीनी आपने, प्रतिहार्य चरणों आये।
प्रतिहार्य वैभव दर्शाये, भक्त चरण में झुक जाये।।20।।

निर्धन धनी का आदर देता, धनी न निर्धन को देते।
ज्ञान के धन से सहित प्रभो जी, ज्ञान हीन का सुख देते।
जड़ लक्ष्मी को छोड़ प्रभो, चेतन लक्ष्मी को पाया है
अनन्त दर्शन ज्ञान भक्ति संग, सुख भंडार दिलाया है।।21।।

जो मनुष्य तन को ना समझे, चेतन को क्या समझेगा।
जो मनुष्य जीवन ना जाने, जीव को कैसे जानेगा।
ज्ञान रूपी वह आतम ध्यानी, भगवन को क्या ध्या सकता।
अज्ञानी मूरख वह जग में,, सच्चा सुख क्या पा सकता।।22।।

पुत्र है मेरा मैं तो पिता हूँ, बस रिश्तो में उलझा है।
नहीं जानता आतम मेरा, पत्थर में पड़ा सोना है।।
कर्म रहित ही शुद्धातम है, जैसे आदिनाथ भगवन।
मैं तो इनके कुल का वंशज, नमन भाव से है चरणन।।23।।

मोह ने ढोल बजाया जग में, सुर असुरों को जीत लिया ।
जीती मैंने सारी दुनिया, सबकों मैंनें वश में किया।।
मोह भी मूर्छित हुआ चरण में, पास आपके जब आया।
मोह मूल से नाशा तुमने, तब ही सच्चा सुख पाया।।24।।

आपने देखा मुक्ति पंथ पर, सबने चार गति देखी।
जग की भटकन, कर्म की उलझन, बोई है दुख की खेती।।

सब कुछ देखा सब कुछ जाने, मान से बांह नहीं देखी।
हम अल्पज्ञ दुखी संसारी , मुक्ति की राह नहीं देखी।।25।।

।।दोहा ।।

राहु सूर्य को ढँकता है, नीर अग्नि का नाश।
विरह भाव जग सुख नशें, प्रभु सुख है अविनाश।। 26।।

बिना जाने भी करे नमन, पावे सौख्य अपार।
अन्य देव को जानके, मिले ना वह फल सार।। 27।।

अज्ञानी मणि पहनकर, समझे कांच समान।
मणि मूल्य न घटत है, फिर भी धनवान॥

।।शेर चाल।।

तर्ज-दे दी हमें आजादी...

अन्य रागी देव को भी, देव कहें है।
व्यवहार में संसारी प्राणी, कुछ भी कहे है ।।
दीप बुझे दीप बढ़ा, मानते है वो।
फूटा घड़ा कल्याण हुआ, जानते हैं वो।।28।।

अनेक अर्थ को बता के, लक्ष्य एक है।
हितकारी वचन सुन के कहे, वक्ता नेक है।।
वच सुन के अनुभव किया कि, ज्वर से मुक्त है।।
निर्दोष प्रभु की वाणी भी, कल्याण युक्त है।। 29।।

स्वंयमेव वचन आपके, इच्छा रहित खिरें।
नियम नहीं नियोग ना, स्वभाव से मिले।।
सागर को पूर्ण मैं करूं, शशि भाव ना ऐसा ।
स्वंयमेव उचित होता है, संशय रहे कैसा।।30।।

गुण आपके गंभीर है, पावन पवित्र है।
गिनती नहीं गुणों की, गुण आप मित्र है।।

गुण छोड़ के प्रभु को, और ना कहीं जाते।
इससे बड़ा क्या गुण हुआ, गुण आपको भाते।। 31।।

प्रभु भक्ति ध्यान स्मरण, करता हूँ मैं सदा।
प्रणाम करूँ नमन भी, मिलती मुझे मुदा।।
इससे ही होगी वांछा पूर्ण, कार्य सिद्ध हो।
जैसे बने तैसा मेरा भी, लक्ष्य सिद्ध हो।। 32।।

त्रिलोकी नाथ आपका, विनाश ना होता।
उत्कृष्ट ज्ञान शक्ति ज्योति, मुक्ति के नेता।।
पुण्य पाप से रहित प्रभु, पुण्य में कारण।
मैं वंदना करूँ तो होगा, बंध निवारण ।। 33।।

स्पर्श गंध रूप शब्द, रस से रहित हो।
पर सबको जानता है जो उस ज्ञान सहित हो।।
प्रभु सबको जानते, तुम्हे, ना कोई जानता ।
तुम हो अचिन्त्य, ध्यान करूँ, तुमको मानता।।34।।

गंभीर धैर्यवान, मन चिन्त ना पाता।
जग वस्तु नही पास सेठ मांगते आता।
प्रभु सबका पार जानते , तुम पार ना पाया।
रक्षक जगत के जीवों के, मैं शरण में आया।। 35।।

त्रिलोक के दीक्षा गुरू को, नमस्कार है।
उन्नत हुये हो निज से ही, प्रभु नमस्कार है।।
पर्वत सुमेरू जैसा था वह , आज वैसा है।
वह धीरे-धीरे ना बढ़े , जैसा का तैसा है।। 36।।

।। शुम्भु छंद।।

स्वयं प्रकाशित हो जिनवर जी, दिन और रात भी नही बने।
देते बाधा न, बाधित होते, कोई कैसे दुखी करे।।
लघु गुरू न एक रूप हो, काल कला से रहित हुये।
समय की मर्यादा भी नहीं है, काल अनंता आप जिये।। 37।।

हे जिनेन्द्र स्तुति कर तेरी, नही दीन वर मांगू मैं।
राग द्वेष से रहित हो प्रभुवर, तेरी भक्ति चाहूँ मैं।।
वृक्ष का आश्रय लेने पर तो, छाया स्वयं ही मिलती है।।
स्तुति भक्ति करें वंदना, कलियां हृदय की खिलती है।। 38।।

यदि कुछ देने का आग्रह प्रभु, अगर आप जो करते है।
सदा ही श्रद्धा रहे आप में, तन मन अर्पित करते है।
यही भाव बस जीवन भर, तेरे चरणों में रम जाये।
अपने शिष्य पे सभी अनुग्रह , रखते गुरु सुख दें जाये।। 39।।

हे भगवन तेरी भक्ति से, सुख धन यश और विजय मिले।
कौन पदार्थ जगत का ऐसा , पुण्यवान से दूर रहे।।
अतः आपकी सच्ची भक्ति , शरण भूत है मेरे लिये।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित पा, आत्म भक्ति हो मेरे हिये।। 40।।

।।दोहा।।

मुनि सुव्रत के चरण में, हुये भक्ति के भाव।
नई-नई भक्ति नित करूं , दूर हो अशुभ विभाव।।
विषापहार स्तोत्र का, हिन्दी में अनुवाद।
'स्वस्ति ' को करके मिला, भक्ति का अति स्वाद ।।

***

।। श्री जिन चतुर्विंशतिका स्तोत्र।।

।। हिन्दी अनुवाद।।

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105श्री स्वस्तिभूषण माताजी)

।। दोहा।।

राजा महाराजा नमें, नमें स्वर्ग के इन्द्र।
ऐसे श्री जिनराज को, नमन करुं अरिवंद।।
प्रभु भक्ति का भाव है, गाऊँ मैं गुणगान।
हृदय में प्रभु आ बसों, बांरबार प्रणाम।।

।। चौपाई ।।

कल्पवृक्ष पल्लव की कान्ति, लख श्री चरण मिटे सब भ्रांति।
संपति पावें भू वश होती, हर्ष सरस्वती क्रीडा करती।।
यश गुंजे खुशियों जग छावें, युद्ध में जाकर विजय वो पावे।
विद्यायें भी शरण मे आवे , जो प्रभु गुण को दिल से गावे।। 1।।

कानों को प्रिय वचन तुम्हारे, चारित सबके कष्ट निवारे।
तन भी मन को शान्ति देता, पुलकित तन मन को कर देता।।
मरूथल में ज्यों गर्मी होवे, सघन वृक्ष सम छाया देवे।
आश्रय पावे ज्ञानी चरण में, भक्त आया है आप शरण में।। 2।।

ज्यों चन्द्रा निकले आकाश, ज्यों कुमुदनी करे विकास।
चंद्र चांदनी अमृत देती, त्यों प्रभु दर्श से कलियाँ खिलती।।
प्रथम बार जब दर्शन किये, लगा जनम की अब ही लिये।
जीवन व्यर्थ बिना प्रभु दर्श, अब आतम में आये हर्ष।। 3।।

इन्द्र मुकुट मणियों की कान्ति, सिहांसन तट दीप की पंक्ति।
हर दम करते भक्ति तेरी, अब तो इच्छा नहीं घनेरी।।
त्रिभुवन स्वामी सर्वज्ञानी, हो, सर्वश्रेष्ठ और सर्वदर्शी हो।
तर्क अगोचर तुमको पाया चारित की महिमा लख आया।। 4।।

इन्द्र भी जिससे आज्ञा मांगे, ऐसा राज्य तजा है तुमने।
मोह त्रिलोक पर विजय पाये, ऐसे मोह को आप भगाये।

लोकालोक ज्ञान दर्पण में, दिखता भक्त के मन अर्पण मैं।
है प्रसिद्ध आश्चर्य नहीं हैं, ऐसा तो नहीं और कहीं है ।। 5।।

श्रद्धा से क्षण भर देखे, इतना पुण्य वो क्षण में पावे।
ज्ञान धनिक को दान दिया है, कठिन तपस्या पुण्य किया है।।
अनेक अनेक पूजा हैं गाई, निर्मल चारित की परछाई।
इतना फल प्रभु दर्श से होवे, जो भक्ति से प्रभु गुण गावे।।6।।

त्रिभुवन तिलक हो चूड़ामणि सर्प का विष हरने की कणी।
कान कसे मन से प्रभु गुण सुने, प्रज्ञापार रतन वो बने।
वह आगम सागर तट जान, रत्न गुणों का वह भगवान
करूँ प्रशंसा कितनी और, इनके बिना नहीं सुख ठौर।। 7।।

चन्दा के सम उज्ज्वल कान्ति, चँवर ढोरे सुर मिलती शान्ति ।
लगता है ज्यों प्रभु से राग, नवतन वधू करें अनुराग।।
सर्वश्रेष्ठ जिनवर हैं आप, तब ही इन्द्र करें तुम जाप।
मैं भी द्वार तिहारे आया, भक्ति कर मनवा हर्षाया।। 8।।

चँवर अशोक वृक्ष सिंहासन, पुष्प वृष्टि भामंडल भासन।
छत्रत्रय और देव दुन्दुभि, चहुं दिश गूंजे प्रभु की ध्वनि।।
नर देवों को हर्षित करते, राजा चरण में शीश झुकाते।
भक्ति करते भक्त तुम्हारी, रक्षा करना प्रभो हमारी।। 9।।

।।दोहा।।

पंचकल्याणक उत्सव में, ऐरावत सुर लाये।
हस्त दंत वन कमल मे, स्वर्ग नारी उमगाय।।
तीन लोक का सुख मिले, उत्सव यात्रा होय।
ऐसे जिन जयवंत हों, बाजों का सुर होय।। 10।।

शेर चार (दे दी हमें आजादी....)

अमृत झरे नयनों से मुख चन्द्र देखते।
मन हो प्रसन्न दर्श से, भावों को लेखते।।

दर्श का उत्सव किया है, नेत्र को कृतार्थ।
हूँ नेत्रवान मैं भी, मालूम हुआ है आज।। 11।।

जो अन्य देव है उन्होंने तो काम ना जीता।
बिन काम के जीते, मिले ना मुक्ति सुभीता।
इस कामदेव के विजेता आप हो जिनराज।
स्त्री नही हैं संग में शुभ आत्मा का राज।। 12।।

प्रभु आपके दर्शन से, पुण्य वृक्ष लह लहा ।
प्रभु पास आके आया है, आनंद अहा अहा।
प्रभु दर्श से इस वृक्ष में, फल फूल लग गये।
चिंता फिकर भी दूर हो, आनंद में भये।। 13।।

जिनदेव का उपदेश, काम मद को मिटाये।
जलधार के समान, जिनके वचन सुहाये।।
स्वर्गों के इन्द्र जिनके, आगे नृत्य करे है।
भगवान श्रेष्ठ जग में, आत्म ध्यान धरें है।। 14।।

इन्द्र चक्री सुर प्रधान, दर्श को आये।
औ नेत्र रूपी भ्रमर जैसे, दर्श को पाये।।
जिन चंद्र रूपी मंदिरो की, दी है परिक्रमा ।
मुझे मुक्ति का आनंद हुआ , शान्त आत्मा।। 15।।

प्रभु हैं, प्रशंसा योग्य, औ स्वभाव भी सुंदर ।
नख चंद्र में जो मुख को देखे, सौख्य समंदर।।
वो भव धैर्य लक्ष्मी, यश कान्ति भी पाये।
मंगल प्रभु मंगल करें, प्रभु गीत को गाये।।16।।

लक्ष्मी का नित अमृत झरे, जिन गिरि शरण में।
है धर्म वृक्ष ऊँचा, फल मिले चरण में।।
फहराती है ध्वजा भी, लक्ष्मी के गृह स्वरूप।
जिन चैत्य भी जयवन्त हो, दिखता है आत्मरूप।। 17।।

उन देवियों के केश भी, करते हैं नमस्कार।
नख चन्द्र किरण वाले , सुरनर का नमस्कार।।
प्रभु कर्म रूपी शत्रु, के समूह को जीता।
उत्कृष्ट हैं जिनेन्द्र, भक्त गायें सुगीता।।18।।

सोकर उठे जो ज्ञानी, हो कल्याण कामना।
मंगल ही रूप देखूं प्रथम, ये है भावना।।
मंगल स्वरूप आप हैं, बस आपको देखूँ।
प्रभु आपके सिवा ना, कुछ और मैं लेखूँ।।19।।

ज्यों तोता तपोवन की शोभा, खूब बढ़ाये।
त्यों धर्म के उदय में, आप ध्यान लगाये।।
नंदन वनों में कोकिला, सुर मधुर गुँजाये।
त्यों आपका चारित्र, काव्य सरस बनाये।। 20।।

ज्यौं भौंरा फूल, द्रह में, है हंस नहाये।
त्यों ज्ञान लक्ष्मी वाले, गुण भूषण पाये।।
उत्तम बनाना चाहते, स्वयं को जो मनुज।
जिन शीश पे धारण करो, है भक्ति का मुकुट।। 21।।

जग स्वर्ग मोक्ष पाने को, करते हैं तप कठिन ।
पर ना मिले है कष्ट होता , पालते नियम।।
हम आपके उपदेश सुने, तत्व को समझा।
महिमा जो सुनी आपकी, स्वयंमेव सुख मिलता।।22।।

इन्द्रो ने किया न्हवन, देवी ने पढ़े थे पाठ।
गंधर्व ने यश गाया, देव सेव की है ठाठ।।
अब क्या करें हम लोग, भक्ति भाव उमड़ता।
मन हो रहा है चंचल , भक्ति को है मचलता।। 23।।

जन्माभिषेक के समय, सुर इन्द्र नाचता।
अमरी ने वीणा को बजाया, जगत झाँकता।।

चारों तरफ जय-जय, की ध्वनि गूंजती रहे।
उस दृश्य को वचनों से, कोई कह नही सके।। 24।।

कमल की पांखुड़ी के समान, नेत्र है जिनके।
प्रतिमा के दर्श से खिले, शुभ सुमन है मन के ।।
कल्याणकों में देवों ने, साक्षात देखा है।
कितना हुआ आनंद, स्वाद स्वयं चखा है।।25।।

जिनदेव के दर्शन से, रसायन को मैं देखा।
चिन्तामणि निधि, औ सिद्ध रस को भी देखा।।
पर इनको देखने से लाभ, क्या मुझे हुआ।
तुम दर्श से मुक्ति विवाह, घर को है छुआ।। 26।।

जिन चन्द्र दरस आपके, विद्वान को आनंद ।
राजा के कमल नेत्र भी , प्रभु हो रहे प्रसन्न।।
प्रभु आपकी स्तुति के शीतल , जल में नहाया।
तब खेद मिटा शक्ति मिली, चित्त को भाया ।।27।।

।। दोहा।।

अब में जाता हूँ प्रभो, चित्त आपके पास।
पुनः पुनः दर्शन मिले, यही प्रार्थना आज।।
श्री भूपाल संस्कृत लिखा, हिन्दी का अनुवाद।
'स्वस्ति भूषण' ने किया , नमता सकल समाज।।

***

वृहत्स्वयं भू स्त्रोत

आचार्य समंतभद्र स्वामी एक महान ज्ञानी तपस्वी और हर स्थान पर जिन धर्म का डंका बजाने में कुशल थे। एक बार उन्हें भस्मव्याधि नामक बीमारी हो गई जिसमें भूख अत्याधिक लगती है। कई दिनों तक उन्होने सहन किया क्योंकि जैन साधु दिन में एक बार भोजन लेते है पर जब भूख सहन न हुई तो अपने गुरु के पास जाकर समाधि की याचना की। गुरु ने अपने निमित्त ज्ञान से देखा कि अभी इनके माध्यम से जिन धर्म की अपूर्व प्रभावना होना है तो उन्होनें आदेश दिया कि जाओ दीक्षा छेदन कर पहले अपने व्याधि बीमारी ठीक करो,पश्चात् पुनः दीक्षा ग्रहण करना।

गुरु आज्ञा से पंडित का वेश बनाकर एक बनारस के प्रसिद्ध मंदिर में पहुँच गये, जहां शिव लिंग को भोग चढ़ता था। वहां के लोगों से कहा कि मैं आपके शिवलिंग को एक मन लड्डू खिला सकता हूँ। वे दरवाजा बंद करके सारे लड्डू स्वयं खाने लगे। धीरे-धीरे बीमारी ठीक हुई तो लोंगों को शंका हुई कि लड्डू क्यों बच रहे है ? लोगों ने टोकरें में नीचे बच्चे को बिठाया ऊपर लड्डू रख कर दिये। बच्चे ने देखा और सबको बताया कि ये लड्डू स्वयं खाते है।

तब पूछा आप कौन है, हमने आपको कभी शिवलिंग को नमस्कार करते नहीं देखा। समाचार सुनकर राजा भी आ गया। समंतभद्र जी ने अपना परिचय दिया और कहा कि आपकी पिंडी मेरा नमस्कार सहन नही करेगी। ये फट जायेगी। राजा ने पिंडी पर चैन बंधवा दी कि नहीं फटेगी। आप नमस्कार करे। तब समंतभद्र जी ने चौबीसो भगवान का स्तवन प्रारंभ किया। एक-एक भगवान का करते जा रहे थे। जब चंद्रप्रभ प्रभु स्तवन किया तो उन्होने हाथ जरा सा झुका दिया। तभी पिंडी फट गई और उसमें से चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिमा प्रगट हो गई। बनारस में आज भी फटी पिंडी के नाम से प्रसिद्ध है। राजा ने जिन धर्म की महिमा देखी तो उसने भी जैनधर्म स्वीकार किया और जिनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। पश्चात् दीक्षा धारण कर जिनधर्म ध्वज फहराया। ऐसे चमत्कारी स्वयंभू स्तोत्र को अवश्य पढ़े।

***

वृहत्स्वयंभू स्त्रोत

हिन्दी पद्यानुवाद –परम विदुषी लेखिका आर्यिका रत्न 105 स्वस्ति भूषण माताजी

।। दोहा।।

चौबीसौं भगवान की, भक्ति को तैयार।
चरण कमल में नमन कर, करता भक्ति विहार।।

ऋषभनाथ जिन स्तवन

शंभु छंद

आप स्वयं ही प्रभु बने, पर का उपदेश नहीं लीना।
सम्यग्ज्ञान नेम को पाके, सब प्राणी का हित कीना।।
गुण समूह से युक्त वचन से, पाप रूप तम हरते हो।
चंद्रकिरण समगुण किरणों से, सबको शोभित करते हो।। 1।।

आदिकाल में कर्म भूमि के, प्रजापति तुम कहलाये।
मतिश्रुत अवधि ज्ञान को पाकर, जीवन जीना सिखलाये।
असिमसि कृषि की शिक्षा दीनी, स्वर्गों के सम सुख पाये ।।
फिर भी ममता तज विषयों से, श्रेष्ठ ज्ञानी प्रभु कहलाये।। 2।।

आप मुमुक्ष आप जितेन्द्रिय, आप सहिष्णु अच्युत हो।
वंश इक्ष्वाकु के प्रथम पुरुष तुम, गुणधारी गुण से युत हो।।
कर्म भूमि के प्रथम राजा हो, वसुधा स्त्री सती हुई।
उसको भी तज दीक्षा लीनी, धरती सारी धन्य हुई।। 3।।

स्वसमाधि की परम अग्नि में, सभी दोष को जला दिया।
दोषो पर तुम्हें दया क्यों आये, इनने हमको कष्ट दिया।
ज्ञान पिपासु प्राणी जगत के, तत्त्व द्रव्य उपदेश दिया।।
और अंत में मुक्ति सुख पा, मोक्ष स्थली वास किया।। 4।।

विश्व चक्षु हो इन्द्र से अर्चित, विद्या से सब जानते हो।
नाभि नन्दन नित्य निरंजन, कर्म रिपु को जानते हो।
क्षुद्र वादी का शासन जीता, धर्म सुशोभित करते हो।
मेरे मन को करों प्रभु पावन, पाप तिमिर को हरते हो।। 5।।

श्री अजितनाथ जिन स्तवन

शंभु छंद

स्वर्ग से आकर जनम लिया प्रभु,अजेय शक्ति के धारक थे।
खेलकूद में भी नहि हारे, अजितनाथ भवतारक थे।
खेल क्रीड़ा में बंधु वर्ग के, मन को हर्षित करते थे।
अजितनाथ कर्मों को जीते, अजित इसी कहते थे।।1।।

सत् पुरुषों के तुम प्रधान थे, अजित आपका शासन था।
पावन-पावन नाम तुम्हारा,पावन आपका आसन था।।
कार्य सिद्ध हो वांछापूर्ण हो, अजित नाम जन लेते हैं।
सारे जग में मंगल होते, नाव भक्त की खेते है।। 2।।

घातिकर्म से रहित महामुनि, भव्यों के करूणा सागर।
कर्म कलंक के शांति हेतु तुम, हो प्रभुत्व शक्ति आकर।।
मेघ रहित ज्यों सूर्य उदित हो,कमल तभी खिल जाते हैं।
जग उपकार प्रभु की वाणी, पाप समूह नश जाते हैं।।3।।

अजितनाथ का धर्म तीर्थ, भक्तों को तीर ले जाता हैं।
भव्य जीव जो श्रुत को पाते,दुख कलेश नश जाता है।।
सूर्य ताप से पीड़ित हाथी, शीतल गंगा जल पाये।
चंदन सी शांति को पा वह, सारे कष्ट को नशवाये।। 4।।

द्रव्य भाव क्रोधादि कषायें, विद्याओं से नष्ट किया।
शत्रु मित्र में समता रखते, शुद्धातम का ध्यान किया।।
आत्म जितेन्द्रिय, आत्म श्री पा, जितआत्मा तुम कहलाये।
अजित प्रभु मेरे भी हिय में,जिन श्री को ही दिलवाये।।5।।

***

श्री संभवनाथ जिन स्तवन

शंभु छंद

भोग रोग से पीड़ित प्राणी, संभव चरण में सुख पाये।
ना लेते धन रोग को हरते, उत्तम वैद्य हो कहलाये।
भव्य जीव तुमसे सुख पायें, संभव इससे कहते हैं।
अनाथ रोगी के नाथ तुम्ही हो, भक्त ह्रदय में रहते हैं।। 1।।

रक्षक रहित है नश्वर जग में, अंहकार से दूषित है।
मिथ्यामल औ जन्म जरा मृतु , अहम क्रिया से पोषित हैं।
ऐसे जनम को प्रभो आपने , कर्म कलंक से रहित किया।
पाप ताप संतापित प्राणी, धर्म से आपने शांत किया।। 2।।

इंद्रिय सुख निश्चय से बिजली, के समान ही चंचल है।
तृष्णा इसकी पुष्टि करता, रोग वृद्धि करे हर पल हैं।
इंद्रिय सुख अपने पीछे से, दुःख छोड़कर जाता है।
कहा आपने ऐसा प्रभुजी, तजो मिले सुख साता है।। 3।।

बंध मोक्ष का कारण क्या है, मुक्ति कैंसे पायेगे।
बद्ध जीव और मुक्त जीव का, परिचय प्रभु करायेंगे।।
स्याद्वाद वाणी है प्रभु की, सच्ची बात बताते है।
जो एकान्ती तत्व न समझे, उपदेशी प्रभु भाते है।। 4।।

हे संभव प्रभु भक्त ये तेरा, पुण्य कथा गाने आऊँ।
अवधि ज्ञानी इन्द्र भी हारा, अज्ञानी मैं क्या गाऊँ।।
तब चरणो में तीव्र भक्ति है, इससे रूक न पाता हूँ।
सच्चा सुख उत्कृष्ट भाव दो, चरणों शीश झुकाता हूँ।।5।।

***

श्री अभिनंदन नाथ जिन स्तवन

शंभु छंद

गुण अभिनंदन करते तेरा, सार्थक नाम अभिनंदन है।
क्षमा सखी औ दया वधू संग, जीवन करते चंदन है।।
निज समाधि की सिद्धि हेतु, दोनों, परिग्रह छोड़ दिये।
बने निर्ग्रंथ ध्यान में पहुँचे, भक्तों के अब रहो हिये।। 1।।

पहले तनु को माना अपना, फिर परिवार की वृद्धि करी।
ये मेरे हैं मैं स्वामी हूँ, मिथ्याभाव की जड़ें हरी ।।
नश्वर जग में भटके जन का, निश्चय ज्ञान कराया है।
जीव अजीव आदि तत्वों को, अच्छें से समझाया है।। 2।।

भूख प्यास के प्रतिकार में, भोजन कर माने जीवन।
इंद्रिय सुख में तृप्ति माने , फिर भी जाते मौत भवन।।
भोजन से जीवन चलता है, फिर क्यों लोग मरा करते ।
परम तत्व परमार्थ ज्ञान दे, प्रभु जग के दुख को हरते है।। 3।।

अति लोलुपी आसिक्त में, भय से नहीं करते।
आसक्ति का फल यदि जाने, स्वयं ही दोष नहीं करते।
विषय कषायों का फल जाना, फिर कैसे आसक्त अहो।
अभिनंदन प्रभु ज्ञान सिखाये, मुक्ति कब हे भक्त कहो।।4।।

विषय वासना की आसक्ति, तृष्णा नित्य बढ़ाती है।
तन-मन को संतापित करके, मन को नित्य लुभाती है।
विषय सुखों का समय है थोड़ा, संतुष्टि न होती है।
करो लोक हित हे स्वामिन तुम, शरण गति बस आपकी है।।5।।

***

श्री सुमतिनाथ जिन स्तवन

गीता छंद (तर्ज –प्रभु पतित पावन....)

प्रत्यक्ष ज्ञान को पाके प्रभु , शुभ सुमति नाम धराया है।
उत्तम है बुद्धि सर्व ज्ञानी, सुमति पाने ये आया है।।
युक्ति उत्तम तत्व को, स्वीकार कर समझाया है।
कर्म कर्ता करण क्रिया, सिद्धि तत्व बतलाया है।। 1।।

यह तत्व एक अनेक निश्चय, रूप से बतलाते है।
यह भेद ज्ञान यथार्थ है, उपचार मिथ्या बतातें है।।
यदि एक का हो अभाव तो फिर, शेष गुण कैसे रहें।
दोनों का होगा अभाव तो, अवाच्य को कैसे कहें।। 2।।

सत् औ असत् की व्याख्या तो, स्व पर अपेक्षा है कही।
सत् औ असत दोनों न माने, तो स्वभाव से च्युत कही।।
आकाश में ना फूल खिलते, वृक्ष पर ही वे लगें।
प्रभु आपके दर्शन सिवा, सब स्ववचन बाधित लगे।।3।।

सब प्रकार से नित्य वस्तु, न उदय, न नष्ट हो।
औ क्रिया कारक की ये विधियां, मान्यता को प्राप्त हो।।
सत् का नाश न जन्म असत का, हो कभी सकता नहीं।
औ दीप बुझ पुद्गल अंधेरा, बन के तो रहता वहीं।।4।।

अस्ति नास्ति का कथन तो, किसी अपेक्षा ठीक है।
औ मुख्य गौण से कर कथन, वक्ता की इच्छा ठीक है।
सुमति प्रभु इस तत्व रस को, भक्तों को हैं बाँटते।।
तुम भक्ति से उत्कर्ष मति हो कर्म बादल छाँटते।। 5।।

***

श्री पद्मप्रभनाथ जिन स्तवन

गीता छंद (तर्ज प्रभुपतित पावन)

तन वर्ण पद्म समान था, औ आत्म सुन्दर मूर्ति थी।
बहिरंग लक्ष्मी से विमुख, चहुँ ओर आपकी कीर्ति थी।।
भव्यों को विकसित तुम करो, ज्योंसूर्य पद्म को करते हैं।
सूरज समा श्री पद्म प्रभ, भव्यों के दुखड़े हरते हैं।। 1।।

मुक्ति श्री जाने से पहले, दिव्य वाणी पाई थी।
संपूर्ण शोभा समवशरण में, सरस्वती खुद आई थी।।
फिर कर्म मल से मुक्त हो, सर्वज्ञ लक्ष्मी भायी थी।
उस ज्ञान लक्ष्मी से सभी ने, दिव्य ज्योति पाई थी।। 2।।

बाल भानु की किरणे जैसे, आप तन से फैलती।
नर देव सब पर ही पड़े, सारी सभा में खेलती।
ज्यों पद्म रत्नों का गिरी, अपनी प्रभा फैलाता है।
त्यों आपकी सुन्दर प्रभा, भक्तों का मन हर्षाता है।। 3।।

सहस पद्म के मध्य प्रभु जी, शुभ विहार को करते थे।
औ कामदेव का गर्व हरकर, गगन शोभित करते थे।।
धन मद के करने वाले देखों, क्या विभूति पाई है ।
नहि कामना नहि वासना ,स्पर्श नाही भायी है।। 4।।

गुण के सागर बूंद की, भक्ति न इन्द्र कर पाया है।
ऋद्धि के स्वामी चरण तेरे, पाये कर हर्षाया है।।
असमर्थ हूँ कैसे करूँ, स्तुति समझ न पाता हूँ।
है तीव्र भक्ति मन में मेरे, इससे भक्ति गाता हूँ।। 5।।

***

श्री सुपार्श्वनाथ जिन स्तवन

गीता छंद

निज रूप में ही लीन होना, जीव का यह स्वार्थ है।
भोगो में रमना क्षणिक ये, नहि जीव का यह स्वार्थ है।।
तृष्णा की वृद्धि शान्ति ना दे, ज्ञान को जाग्रत करो।
कहते श्री सुपार्श्व भगवन् , शीघ्र कर्मों को हरों।। 1।।

कोई मशीन ना खुद चले, इसे जीव ही तो चलाता है।
यह तन भी खुद ही न चले , इसे जीव ही तो चलाता है।।
नश्वर घृणित दुर्गंध युक्त, इसे प्रेम करना व्यर्थ है।
कहते श्री सुपार्श्व भगवन, बात यह हित अर्थ है।। 2।।

दोनों ही कारण कार्य करते, एक से ना होता है।
औ होनहार कभी न टलती, अहम में नर रोता है।
प्राणी को सुख दुख कर्मों से हो, दे कोई सकता नहीं।।
कहते श्री सुपार्श्व प्रभु , कोई और कह सकता नहीं।। 3।।

मृत्यु से डरते पर ना छूटे, बार-बार यह होती है।
कल्याण की इच्छा करें, पर इच्छा मुक्ति न देती है।।
भय, काम के वश में हुआ, अज्ञानी दुख को पाता है।
कहते श्री सुपार्श्व प्रभु, मुक्ति का दुख से न नाता है।। 4।।

आप सब तत्वों के ज्ञाता, नहीं संशय ज्ञान में।
बालक को माँ समझाये ज्यों, उपदेश दें अज्ञानी में।।
गुणवान भव्यों के हो नेता, मैं करूँ भक्ति तेरी।
त्रियोग से गुण गाऊँ तेरे, छूटे कर्मों की फेरी।। 5।।

***

श्री चन्द्रप्रभ जिन स्तवन

शेरचाल (तर्ज–दे दी हमें आजादी)

चन्द्र की किरण के समा, गौर वर्ण हो।
हो दूजे चन्द्र आप, सुर से वंदनीय हो।।
ऋषियों के इन्द्र है जिनेन्द्र, अघ बंध को जीता।
बंदू तुम्हें हे चन्द्र प्रभु, परम पुनीता।। 1।।

बाहर का अंधकार प्रभु के , तन से हट गया।
और ध्यान का दीपक जला, अंदर का तम गया।।
ज्यों सूर्य की किरण तो, तम को नष्ट करे है।
प्रभु चंद्र मन का दें उजाला, चिन्ता हरे है।। 2।।

मद से गीले गण्ड गज के, गर्व से भरा।
पर सुन के सिंह गर्जना की, वो तो डर रहा।।
प्रतिवादि प्रभु की वाणी सुन के, मद रहित होते ।
आते वो प्रभु शरण,बीज मुक्ति का बोते।। 3।।

तीव्र तप के तेज से, कर्मों को नाशा है।
परमात्म पना पाया, भक्त दौड़ा आया है ।।
हे विश्व चक्षु अनंत ज्ञान, जग को प्रकाशा।
प्रभु तीर्थ दुख को दूर करे, हमको भी आशा।।4।।

प्रभु भव्य हृदय को खिला के, चंद्रमा बने।
रागादि दोष मेघ हटा, स्वच्छ है घने।।
वे न्याय किरण माला, स्याद्वाद बनाये।
निर्मल प्रभु पावन करें, हम आशा लगाये।। 5।।

***

श्री सुविधिनाथ स्तवन

शंभू छंद (तर्ज- भला किसी का कर...)

सुविधि नाथ के ज्ञान तेज से, तत्व एकांत निषेध किया।
प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्धि कर, विधि निषेध को बता दिया।।
अनुभूति नहीं भिन्न आपसे, निज सुख अनुभव करते है।
मत विपरीत न अनुभव करते , बस दुःखों को हरते है।। 1।।

प्रभों आपका तत्व तो निश्चित, दोनों रूप बताया है।
है तद्रूप न अतद्रूप है, प्रभु जी ने समझाया है।
विधि निषेध न भिन्न हुआ, और अभिन्न भी होता है।
माने न यदि ऐसा तो फिर, शून्य दोष ही आता है।। 2।।

यह तो वही है ऐसा जाना, इसीलिये तो नित्य कहा।
अन्य रूप भी दिखता है यह, इसीलिये अनित्य कहा है।
भीतर बाहर दोनों कारण, मिल के कार्य को करते है।
इससे नित्य अनित्य तत्व है, नहीं विरूद्ध भी कहते है।। 3।।

पद है वाच्य स्वभाव से ही, यह वृक्ष है ज्ञान कराता है।
एक रूप है अनेक रूप है, दोनों रूप बताता है।।
वर्तमान को ही बस माने, गौण को वो नहीं मानता है।
स्याद्वाद में बाधक है वह, बस एकान्त को जानता हैं।। 4।।

गौण मुख्य का कारण प्रभु ने, अर्थ युक्त है बतलाया।
जिनमत द्वेषी अनिष्ट मानते, नहीं समझ उनको आया।।
हे जिनेन्द्र हे साधुराज, तव चरण कमल सुर पूजित है।
मैं भी वंदन अर्चा करता, भक्ति के सुर गुँजित है।। 5।।

***

श्री शीतलनाथ जिन स्तवन

शंभू छंद

चंद्र किरण तो न शीतल है, नहीं शीतल है गंगा जल।
ना चंदन, ना मोती माला, शीतल वचन हरे अघ मल।
शांति जल से मिश्रित वाणी, दोष रहित वच रूप किरण।
विद्वानों को शीतल करती, माने तुमको दोष हरण।। 1।।

सुख अभिलाषा अग्नि दाह से, मूर्छित हुआ था आतम मन।
ज्ञानामृत के जल द्वारा प्रभु, शान्त किया तब खिला चमन।।
ज्यों विष दाह से मूर्छित वैद्य तो, मंत्र गुणों से ठीक करे।
वैसे ही प्रभु नाम मंत्र से, भक्त स्वयं के पाप हरे।। 2।।

जग में जग जन जीवन हेतु, तृष्णा काम की अभिलाषा।
दिन में श्रम कर गृहस्थी चलाते, रात में सोते तन दासा।।
हे शीतल प्रभु किन्तु आप तो, अहि निशि आलस ना करते।
आत्म विशुद्धि पाने हेतु, रात में भी जागा करते।। 3।।

कई तपस्वी सुत धन पाने, अग्नि होम किया करते।
इह परलोक की तृष्णा में वे, आयु कर्म को क्षय करते ।।
पर शीतल प्रभु सम बुद्धि हो, मन वच काय को साधा है।
जन्म जरा के तजने हेतु, दूर करी हर बाधा है।। 4।।

हे शीतल जिन उत्तम ज्योति तो, जग प्रकाश औ सुखी करे।
पुर्नजन्म से रहित आप कहाँ, कहाँ अन्य की बात करें।।
अल्पज्ञान में गर्व है करते, पूर्ण ज्ञान में गर्व नहीं।
ज्ञानी जो आतम हित चाहे, करें स्तुति बात सही।। 5।।

***

श्री श्रेयांसनाथ जिन स्तवन

शंभू छंद

वचन अजेय श्रेयांसनाथ के, पथ कल्याण दिखाते है।
हित उपदेश दें संसारी को, हितोपदेशी कहाते है।।
तीन लोक में आप अकेले, सूरज के सम चमक रहे।
मेघ न ढँकते, राहू न ग्रसता, सूरज के सम दमक रहे।। 1।।

वस्तु कदाचित विधि निषेध में, दोनों रूप समायी है।।
ज्ञान प्रमाण ही करे प्रमाणित, प्रभु ने बात बतायी है।।
इक गुण की जब व्याख्या करते, दूजा गौण ही होता है।
यही मुख्य के नियम का हेतु, नय दृष्टांत से कहता है।। 2।।

वस्तु विवक्षित मुख्य कहाये, दूजी गौण कहाती है।
हुई गौण है नहीं अभाव, प्रभु वाणी यही बताती है।।
मित्र है होगा या हो शत्रु, या कि अनुभय होता है।
निश्चत से द्विभाव रूप में, कार्यकारी जग होता है।। 3।।

वादी प्रतिवादी जब झगड़े, अनेकान्त, सुलझाता है।
पर ऐसा दृष्टांत नहीं, एकान्त पक्ष बतलाता है।।
हे प्रभु आपका अनेकान्त, चहुँ ओर प्रभाव जमाये है।
प्रभु श्रेयांस की बात मान ली, चिन्ता भी मिट जाये है।। 4।।

न्याय रूप बाणों से ही, एकान्त दृष्टि की सिद्धि की।
इससे मोह रिपु को नाशा, ज्ञान विभूति की वृद्धि की।।
समवशरण सम्राट बने, अर्हंत देव को नमस्कार।
मेरे स्तवन योग्य प्रभु को, वंदन करता बारंबार।। 5।।

***

श्री वासुपूज्य जिन स्तवन

शंभू छंद

गर्भ जन्म आदि कल्याणक, क्रियाओं से पूज्य हुये।
वासुपूज्य शुभ नाम को धारण, कर जग में विख्यात हुये।।
चक्री इन्द्र के द्वारा पूज्य हो, अल्पबुद्धि पूजूँ मैं भी।
दीप शिखा से सूर्य की पूजा, देखा मैं करता जग भी।। 1।।

हे स्वामी तुम्हे राग नहीं है, अब पूजा से अर्थ नहीं।
हे स्वामिन तुम बैर रहित हो, अब निन्दा भी व्यर्थ रही।।
तो भी आपके पुण्य गुणों को, बार-बार स्मरण करें।
चित्त हमारा पावन होवे, पाप ताप संताप हरें।। 2।।

हे जिनेन्द्र प्रभु आपकी पूजा, सुरगण आकर करते हैं।
है सराग मानव पूजा जो, किंचित पाप को करते है।।
बहुत पुण्य की राशि पाकर, दोष दूर हो जाता है।
विष कण विशाल सागर को क्या, वह दूषित कर पाता है।।3।।

बाह्य वस्तु तो पुण्य पाप की, उत्पत्ति में कारण है।
उपादान पर मुख्य कहा, इसके बिन कार्य निवारण है।।
आत्म प्रवर्तन हुये बिना, बाहर की वस्तु क्या करती।
गुण दोषों में अंतर कारण, भाव शुभाशुभ को भरती।।4।।

बाह्य और आभ्यंतर कारण, घट बनने को पूर्ण करे।
द्रव्य तो है स्वाभाव से ऐसा, अन्य प्रकार से नहीं बने।।
पुरुष मोक्ष में जाना चाहे, यही विधि बतलायी है।
परम ऋषि से युक्त प्रभु, ज्ञानी की भक्ति भायी है।। 5।।

***

श्री विमलनाथ जिन स्तवन

शंभूछंद

नित्य है वस्तु और क्षणिक है, बस एकान्त से कहते है।
कलह क्लेश कर भाव बिगाड़े, मिथ्यामत में रहते है।।
विमलनाथ जिन अनेकान्त, स्व पर उपकार कराते है।
रहे परस्पर नय ये सारे, श्री मुनीन्द्र बतलातें है।। 1।।

कार्य सिद्धि के हेतु कारक, करें अपेक्षा आपस में।
उसी तरह सामान्य विशेष की, व्याख्या होती आपस में।।
गौण मुख्य की करें कल्पना, वस्तु समझ में आती है।
इष्ट कार्य के सिद्ध करन को,नय की भाषा भाती है।।2।।

हे जिनेन्द्र इस धरती पर तो, स्व पर प्रकाशी ज्ञान कहा।
वह प्रमाण भी है प्रसिद्ध, बुद्धि लक्षण संग रुप अहा।।
उसी तरह तो आपके मत मे, भेद अभेद में एकता है।
है सामान्य विशेष जहाँ पर, वहीं अर्थ की पूर्णता है।। 3।।

वस्तु का जो कथन करे,तो वह विशेषता होती है।
जिस वस्तु का कथन किया है, वह विशेष्य हो जाती है।।
किन्तु विशेषण औ विशेष्य का,प्रसंग सामान्य ही आता है।
स्याद्वाद द्वारा अर्थ कथन जो,मुख्य गौण बन जाता है।।4।।

स्यात् पद चिन्हित, आपने प्रभु जी, नय की महिमा बतलायी।
ज्यो पारस को छूकर लोहा, सोना बन जाता भाई।।
अतः हितों के इच्छुक जन भी नमन चरण में करते हैं।
उत्तम पुरुष तुम्हें पहचाने, भाव समर्पित करते हैं।। 5।।

***

श्री अंनतनाथ जिन स्तवन

चौपाई (तर्ज-चालीसा)

अनंत दोष का आश्रय तन है, हृदय ममता मान मगन है।
काल अनंता मोह मे जीते, इस पिशाच से कोई न जीते।।
किन्तु प्रभु जी आपने जीता, पढ़ी आपने आतम गीता।
इससे अनंत जित् कहलाये, भक्त चरण में शीश झुकाये।।1।।

शत्रु कषाय जगत दुख देवे, किन्तु आप इसे हर लेवे।
हुये सर्वज्ञ जगत दुख जाना, बस निज आतम को ही ध्याना।।
ध्यान रूप गुण औषधि पाई, कामदेव की करी सफाई।
दुष्ट काम, मद ताप ही देता, बने आप प्रभु आतम जेता।। 2।।

भोग आकांक्षा की नदी बहती, परिश्रम रूपी जल में रहती।
भय लहरों की मालायें हैं,किन्तु आप गुण शालायें है ।।
अपरिग्रह की गर्म किरण से, सुखाई आपने इसको जड़ से।
परम धाम निर्वाण को पाया,भक्त ने आकर शीश झुकाया।।3।।

भक्त तुम्हारा लक्ष्मी पाये, तुमसे द्वेष करें मिट जाये।
प्रत्यय सम बुद्धि खो जाती, उसको अच्छी बात न भाती।।
भक्त अभक्त में आप की समता , नहीं द्वेष है नहीं है ममता।
यह चेष्टा है आश्चर्य कारी, भक्त ये शरणा आये तुम्हारी।। 4।।

तुम ऐसे हो तुम वैसे हो, महामुनि जी तुम जैसे हो।
अल्पबुद्धि मैं करूँ प्रलाप, सब जानों प्रभु कैसे आप।।
पूरी महिमा न कह पाऊँ, फिर मुक्ति का मैं सुख पाऊँ।
अमृत सागर हूँ सुख पावें, प्रभु महिमा ही सुख को लावे।। 5।।

***

श्री धर्मनाथ जिन स्तवन

चौपाई

धर्म तीर्थ को आप चलाया, धर्म नाम को सार्थक पाया।
महापुरूषों ने धर्म कहा था, धर्म का झरना भी बहता था।।
तप रूपी अग्नि को जलाये, अघ जंगल तो तभी जलाये।
अविनाशी सुख प्राप्त किया है, सत् जन शंकर नाम दिया है।।1।।

सुर नर से प्रभु घिरे हुये हैं, गणधर मुनि से घिरे हुये है।
जब आकाश में चलते प्रभु वर, चन्दा के सम लगते जिनवर।।
तारा सम भक्तो से वेष्टित, निर्मल अमल करेंगे सब हित।
ऐसा दृश्य प्रभु हम देखें, पावन चरण तुम्हारे लेखे।। 2।।

प्रातिहार्य तुम शोभ बढ़ाये, स्वर्ग लक्ष्मी चरणों आये।
किन्तु आप विरक्त ही रहते, तन की ममता को भी तजते।।
मोक्ष मार्ग उपदेश दिया है, नर देवों ने आन लिया है।
पर इसके फल को ना चाहो, हुये व्यग्र ना आप सराहो।। 3।।

मन औ वचन काय की चेष्टा, करने की ना होती इच्छा।
सहज-सहज में होती हैं ये सही ज्ञान सुख बोती हैं ये।।
धीर वीर गंभीर प्रभुजी, अचिन्तनीय हो आप प्रभु जी।
चरित आपका जो भी गाये, पाप ताप संताप मिटाये।। 4।।

नर स्वभाव से ऊँचे उठ गये, कर्म नाश के भगवन बन गये।
इन्द्र चन्द्र के द्वारा पूजित, स्वर्गों में हो भक्ति गुंजित ।।
हे स्वामिन तुम परम देव हो, देवों के तुम महादेव हो।
हो कल्याण प्रभु जी हमारा, हो प्रसन्न जग आया द्वारा।। 5।।

श्री शांतिनाथ जिन स्तवन

चाल छंद (तर्ज–ऐ मेरे वतन के...)

थे अतुल प्रतापी राजा, और चक्री थे महाराजा।
की प्रजा जनों की रक्षा, चिरकाल करी थी सुरक्षा।।
फिर स्वयं ही मुनि बने थे, पापों को शीघ्र हने थे।
तुम दयामूर्ति कहलाये, भक्तों ने शीश झुकाये।। 1।।

श्री शांति प्रभु जी महोदय, तुमसे शत्रु को हो भय।
नृप चक्र को चक्र से जीता, हुये चक्री आप विनीता।।
फिर ध्यान चक्र के द्वारा , दुर्जय तुम मोह निवारा।
फिर केवलज्ञान को पाया, भक्तों ने शीश झुकाया।। 2।।

थे राजाओं में राजा, सब नृप सुख साधन काजा।
नौ निधि रत्नों के स्वामी, नृप बीच सुशोभित नामी।।
फिर वीतरागी पद पाया, आतम पर शासन आया।
अर्हंत लक्ष्मी पाई, सुर देव सभा मन भायी।। 3।।

जब राजा आप हुये थे, राजा के समूह झुके थे।
मुनि बने दया उर आई, तब धर्म चक्र झुके भाई।।
जब पूज्य बने जिन भगवन, सुर नर आये थे चरणन्।
फिर आतम ध्यान लगाया, अघ हाथ जोड़ कर आया।।4।।

स्वदोष को शांत किया है, निज आतम शान्त हुआ है।
शरणागत को दें शान्ति, टूटे भव क्लेश की पंक्ति।।
कर्मों की करी सफाई, भगवान की संज्ञा पाई।
आया शान्ति जिन शरणा, प्रभु मुझमें शान्ति भरना।। 5।।

।। दोहा।।

शान्ति विधाता आप हो, शान्त करों मन नाथ।
भव भय से शांति मिले, झुका चरण में माथ।।

***

श्री कुंथुनाथ जिन स्तवन

चाल छंद (ऐ मेरे वतन के लोगो....)

हैं कुंथू कुंथू दयालु, राजाधि राज चक्रालु।
ज्वर जरा मरण की शांति, नश कर्म की टूटी भ्रान्ति।
मुक्ति का करें प्रचार, धर धर्म चक्र का भार।
हे कुंथुनाथ जिन राजा, मम भक्तो के महाराजा।।1।।

ये विषयों की ज्वालायें, इंद्रिय विष की मालायें।
ये शान्ति नही हैं देती, सब ओर से बुद्धि हरती।।
ये भोग ताप हरते है, ये उसी समय लगते है।
ऐसा चिन्तन जब कीना, इंद्रिय विष को तज दीना।। 2।।

तन-मन को खूब तपाया, अंदर आतम चमकाया।
तप उग्र कठिन नित करते, दुर्जय कर्मों को हरते।
तज आर्त रौद्र दो ध्यान, अतिशय उत्पन्न प्रमाण।
धर धर्म शुक्ल दो ध्यान, करे स्थिर आतम ध्यान।। 3।।

रत्नत्रय कुंड बनाया, चतुघाति कर्म जलाया।
अतिशय रत्नत्रय नेता, परमागम आप प्रणेता।।
निर्मल आकाश में सूरज, त्यों आत्म गगन में जिनवर।
सामर्थ्यवान जिनराजा, हो तारण तरण जिहाजा।। 4।।

विद्या विभूति जो तुममे, नहिं कण होती ब्रम्हा में।
हे यति नाथ जिन ज्ञानी, करते शत् बार नमामि।।
आतम हित के अभिलाषी, उत्तम बुद्धि जिन भाषी।
करें स्तुति चरण में आके, स्तुत्य हो आतम पाके।। 5।।

***

श्री अर जिन स्तवन

भुजंग प्रयात (तर्ज-नरेन्द्रं फणीन्द्रं)

अल्प गुणों को जब कहते है ज्यादा।
कहते उसे भक्ति, पावन हो आदा।।
गुण है अनंता, मैं गाऊँगा कैसे?
हूँ भक्ति विवश, रहूँ चुप मैं कैसे।। 1।।

प्रभो तेरे पुण्य की, कीर्ति को गायें।
हे मुनियों के इन्द्र, तुम्हें सर झुकायें।।
तेरा नाम आतम को, पावन कराये।
सभी से कहूँ मैं, तेरा नाम गायें।। 2।।

चक्र है लक्षण, जगत् के हो स्वामी ।
निधियां रतन भरे, महलों में पानी।।
हुई मोक्ष इच्छा, तजा राज्य सारा।
लगा जीर्ण के सम, मिला भव किनारा।। 3।।

प्रभों रूप तेरा, जो सौंदर्य देखे।
करता है आश्चर्य, झपके न पलकें।।
इन्द्र दो नेत्रों से, देखे ना थकता।
सहस्रो नयन से, प्रभुजी को लखता।। 4।।

हे धीर! तुमने है, पापों को नाशा।
कषायों की सेना का, चालक विनाशा।।
रत्नत्रय का शस्त्र, जो हाथों लिया है।
रिपु मोह को ही, पराजित किया है।। 5।।

तीनों ही लोको को, मैंने है जीता।
कहे गर्व से काम, मैं हूँ विजेता।।
किन्तु प्रभो वो, तुमकों न जाने।
जैसे ही जाना, हो लज्जित गुमाने।। 6 ।।

इह लोक परलोक, दुख का है कारण।
तृष्णा नदी कैसे, होगा निवारण?
निर्दोष विद्या की, नाव बनाई।
तृष्णा नदी पार, करके दिखाई।। 7।।

पुर्नजन्म ज्वर आदि, मित्र बनाये।
मानव को दुःख दें, हमेशा रूलाये।।
मरण का भी अंत, प्रभों आप करते।
तुम्हारी शरण पा, मरण भी सुधरते ।।8।।

वस्त्र और शस्त्र, हो आभूषण त्यागी।
दया, ज्ञान इंद्रिय, दमन में विरागी।
प्रभो वीतरागी, स्वरूप है तेरा।
दोषो रहित धीर, कर दो सबेरा।। 9।।

प्रभु तन प्रभा, बाह्य तम को है हरती।
चारों तरफ ही तो, आभाये भरती।।
शुकल ध्यान अग्नि में, कर्म जलाये।
किया आत्म रोशन, अंधेरा भगाये।।10।।

हे नाथ! सर्वज्ञ, ज्योति जलाई।
महिमा का उत्कर्ष, गुणियों ने गाई।।
चतुर प्राणी गुणदोष, देख के माने।
झुके वे भी चरणों में, बस तुमको जाने।।11।।

प्रभो दिव्य वाणी, जो संसदि में खिरती।
सभी भाषा रूप, स्वभाव से होती।।
वचन रूप अमृत, जब कर्णों मे जावे।
संतुष्ट जन-मन, सभी मन को भावे।।12।।

प्रभो तेरी वाणी, अनेकान्त रूप।
यही सत्य और, असत्य एकान्त।।
स्वघातक है एकान्त, मिथ्या बताया।
स्वघातक जो होने से, अनुचित बताया।।13।।

लखे दोष परमत के , निजमत न देखे।
हाथी के सम जो, दिखे फिर न देखे।।
स्वपस सिद्धि, न पर की असिद्धि।
नहीं योग्य जिनमत के,मिथ्यात्व वृद्धि।।14।।

स्वघाती दोष, शमन कर न पाये।
अनेकान्त से द्वेष, स्वहन ही कराये।।
अज्ञानी, तत्व, अवक्त बताये।
एकान्त में वस्तु , व्याख्या न आये।।15।।

सद् एक नित्य और वक्तव्य होता।
इसके विपक्ष से, नयपूर्ण होता।
एकान्त पक्ष हो, दोष बढ़ाये।
कंथचित की व्याख्या, हो दोष हटाये।।16।।

एकान्तवादी तो, स्याद् शब्द त्यागे।
वस्तु स्वरूप, अपेक्षा में लागे।।
प्रभो आपका न्याय, परमत में ना है।
वे एकान्त वादी तो, जिनमत में ना है।।17।।

अनेकान्त को तो, दो रूप बताया।
नय औ प्रमाण से, इसे समझाया।।
प्रमाण में वस्तु की, पूरी है व्याख्या।
नय तो बस एक ही, करता है व्याख्या ।।18।।

उपमा रहित अर है, शासन तुम्हारा।
प्रिय हित है योग, सुदर्शन तुम्हारा।।
इंद्रिय विजयी हो, दम तीर्थ नायक।
भक्तों को उपदेश, दे सौख्य दायक।।19।।

मेरी मति ओर, आगम की दृष्टि।
गाया है गुण, होवे पापों की कृष्टि।।
हूँ अल्प न पूरा ही आवे।
दो वरदान प्रभुजी, करम को नशावे ।।20।।

***

श्री मल्लिनाथ जिन स्तवन

भुजंग प्रयात (तर्ज-नरेन्द्रं फणीन्द्रं)

सकल लोक को आप, स्पष्ट जानो।
महर्षि बने ऋषि, सेवा भी मानो।।
सुर नर ने आकर, प्रणाम किया है।
सब जग के प्राणी ने, शरणा लिया है।। 1।।

तव तन की आभा, सुवर्ण मयी है।
तत्वों के इच्छुक को, स्याद् पद सही है।।
तन और वाणी, भव्यों को लुभाये।
मिला मुक्ति का पथ, जो शरणा में आये।।2।।

प्रभु वाणी सुन करके, एकान्ती हारे ।
न करते विवाद, प्रभु को निहारे।।
विहार समय भू पे, कमलों की रचना।
खिले है कमल जैसे, धरती का हँसना।। 3।।

मल्लि जिनेन्द्र है, इन्दु से शोभित।।
शिष्य और साधु भी होते है मोहित।।
जग सिन्धु में है जो, भय भीत प्राणी।
उतारे उन्हें पार, प्रभु तेरी वाणी।। 4।।

उत्कृष्ट तप रूपी, अग्नि जलायी।
शुकल ध्यान में, कर्म की है दहायी।।
जिन श्रेष्ठ शल्य और, मिथ्या रहित हो।
हम मल्लि प्रभु जी की, शरणा सहित हो।।5।।

***

श्री मुनिसुव्रतनाथ जिन स्तवन

शेरचाल (तर्ज–दे दी हमें आजादी)

मुनि बन के सुव्रतों को, आप दृढ़ता से धारा।
मुनियों में श्रेष्ठ आप थे, अघ घाति निवारा।।
सार्थक है मुनिसुव्रत नाम, ऐसे लगते हो।
ताराओं के जो मध्य सोम, जैसे लगते हो।।1।।

हे जिनेन्द्र तप से तन की, आभा फैली है।
यह आभा तो मयूर कंठ, वर्ण वाली है।।
तुम मान काम का स्वयं से, दूर कर दिया है।
ग्रह मध्य में चंदा रहे, शोभित है त्यों जिया।।2।।

शशि रूचि शुचि शुक्ल, रक्त वाले हो।
सुरभित शरीर, मल रहित, सुवचन वाले हो।।
अत्यन्त आश्चर्य, ये शुभ रूप आपका।
सुंदर विचार मन में है, जिन देव आपका।।3।।

हे जिनेन्द्र चर अचर, जग के हैं पदार्थ।
उत्पाद ध्रौव्य व्यय से युक्त, बात है यथार्थ ।।
ये जो वचन आपके, वक्ता में श्रेष्ठ हो।
सर्वज्ञ का ही चिन्ह है, प्रभु जग में ज्येष्ठ हो।।4।।

अनुपम जो शुक्ल ध्यान, उसके बल को बढ़ाया।
फिर अष्ट कर्म के कलंक, उसमें जलाया।।
पश्चात मोक्ष सुख से, प्रभु युक्त हो गये।
मेरा जगत भी शान्त हो, हम धन्य हो गये।।5।।

***

श्री नमिनाथ जिन स्तवन

शंभु छंद

किसी काल में किसी देश में, प्रभु स्तुति तो कर सकते ।
देव सामने रहें न रहे, शुभ परिणाम तो कर सकते।।
मिले नमि जिन स्तुति करने, कर्म हमारे शीघ्र हरे।।
निजाधीन है सरल मुक्ति पथ, क्या अब स्तुति नहीं करे ?।।1।।

शुद्ध आत्म में स्थिर होकर, जन्म का कारण नष्ट किया ।
विद्वानों को बने मुक्ति पथ, ज्ञानज्योति को प्राप्त किया।।
ज्ञान किरण तो ऐसे फैली, अन्य सभी जुगनू लगते।
सूर्य सा तेज है तुममे भगवन, भक्त सभी चरणो झुकते॥27।।

तीन भुवन के ज्येष्ठ गुरु हो, सप्त भंग बतलाये है।
बहुनय से ही होय विवक्षा, विधि निषेध कहलाये है।।
करें अपेक्षा इक दूजे की, तभी वस्तु व्याख्या होती ।
उभय औ अनुभय मिश्र कहा है, सप्त भंग के है मोती।। 3।।

प्राणी अहिंसा परम ब्रम्ह है , जग में ऐसा विदित हुआ।
जहां परिग्रह थोड़ा भी हो, नही अहिंसा नही दया।
इसीलिये प्रभु दोनों परिग्रह, छोड़ महाव्रत धारे थे।
विकृत वेश को दूर से छोड़ा, आप जगत में न्यारे थे।। 4।।

काम व्याधि पर विजय जो पाई, वस्त्राभूषण रहित हुये।
बिना शस्त्र के उदय क्रोध को, नाश प्रभु तन शांत किये।
काम क्रोध ओ मोह रहित हो, शान्ति सदन बनाया है।
शरण भूत हो आप हमारे, भक्त शरण में आया है।।5।।

***

श्री अरिष्ट नेमि जिन स्तवन

गीता छंद (तर्ज -प्रभु पतित पावन....)

तुम परम योग की अग्नि में, कर्मों का ईंधन डाला है।
फिर ज्ञान किरणें विपुल फैली, हुआ लोक में उजाला है।।
हो तीर्थ नायक हो जितेन्द्रिय, विनय और निर्दोष हो।
हरिवंश नायक कमल नयन, तुम शील के सागर भी हो।।

दोहा

अजर अमर हो नेमि जिन, किया कर्म का नाश।
लोका लोक प्रकाश कर, किया मुक्ति में वास।। 1-2।।

गीता छंद

स्वार्थ मन में मोक्ष का है, मन निंयत्रित है हुआ।
विद्वान जो प्रभु मंत्र पढ़ते, चरणों में आके किरणें पड़े।
इंद्र चरणों में है झुकते, मौलिमणि किरणें पड़े।
निर्मल कमल सम लाल रंग के, प्रभु चरण सबको दिखे ।।

दोहा

चन्द्र रश्मि के ही समा, नख अंगुलि स्थान।
ऋषि महर्षि भी करे, चरणों में प्रणाम ।। 3-4।।

गीता छंद

सूर्य सम शुभ चक्र से, किरणों से कान्ति फैलती।
औ नील जलद सिन्धु के सम, शुभ श्याम तन का देखती।।
अर्द्ध चक्री कृष्ण औ बलभद्र, आत्मीय बंधु थे।
विनय धर्म के रसिक थे, सब बंधु चरणों झुके थे।।

दोहा

राजा महाराजा सभी, करते तुम्हें प्रणाम।
हम भी भक्ति से झुके, स्वीकारों जिनधाम।। 5-6।।

गीता छंद

गिरना गिरी भू ककुद सम, विद्याधरी शोभित करे।
बादल के दल शिखरों के तट, सब भक्त को मोहित करे।
श्री इन्द्र ने शुभ वज्र से लिखकर वहाँ, चिन्हित किया।
श्री नेमि जिन के चरण को, ऋषियों ने भी वंदन किया।

दोहा

उर्जयन्त शुभ नाम है, उर्जा भरे अपार।
सिद्ध क्षेत्र प्रसिद्ध है, करता भव से पार।। 7-8।।

गीता छंद

हस्त रेखा के समा, सब जग को युग पद जानते।
अंदर बहिर की इंद्रिया, बाधक न साधक जानते।।
है न्याय सिद्ध चरित्र प्रभु का, भक्त चरणा बैठते।
मन से प्रसन्न है चित्त मेरा, थिर हो तुमको देखते।।

दोहा

समवशरण अदभुत बना, दर्श से हो आश्चर्य।
मुझको भी दर्शन मिले, मिले क्षेत्र हो आर्य।।9-10।।

***

श्री पार्श्व जिन स्तवन

शेरचाल (तर्ज– दे दी हमें आजादी)

काली घटा से कमठ ने, जल खूब गिराया।
औ बिजली आंधी, वज्र से भी खूब डराया।।
उत्कृष्ट योगी ध्यान से, विचलित नहीं हुए।
फिर हार के कमठ ने चरण, प्रभु के छुए ।।1।।

उपसर्ग समय पार्श्व प्रभु, ध्यान लीन थे।
तब नाग ने बिजली के समा, फण से ढंके थे।।
बहुत बड़ा फण का मंडप, ऐसा बनाया।
ज्यों काली संध्या मेघ ने, गिरी को समाया।।2।।

शुक्ल ध्यान रूपी खड्ग, तीक्ष्ण धार थी ।
दुर्जय जो मोह शत्रु था, उसपे उतार दी।।
त्रिलोक जिसको पूजता, पद ऐसा है लिया।
अरिहंत बने पार्श्वनाथ, ज्ञान दे दिया।।3।।

जब घाति कर्म नाशे तो, ईश्वर हुये ये आप ।
दे शांति का उपदेश, औ फैला प्रभु प्रताप।।
प्रभु आप जैसा बनने को, कुछ भाव बनाये।
वनवासी तापसी सभी, प्रभु चरणों में है आए।।4।।

प्रभु सत्य विद्या औ तपस्या, के थे प्रणेता।
वे पूर्ण ज्ञानी उग्रवंश, कुल के थे नेता।।
मिथ्यापथ के दृष्टि का, विभ्रम मिटा दिया ।
है पार्श्व प्रभु को प्रणाम, हर्षे है जिया।। 5।।

***

श्री महावीर जिन स्तवन

शेर चाल

हे वीर आप पृथ्वी पर, गुण गण से हैं शोभित।
गुण इतने हैं प्रभु आपमें, हो कीर्ति भी मोहित।।
नक्षत्र की सभा में, नभ में चंद्र दिखाये।
उस कुन्द कुसुम के समान, आप हैं भाये।। 1।।

सतयुग में भी कलयुग में भी, शासन तो जयति है।
हो भव्य के भवों का नाश, बस ज्ञान आदि है।
दोषों की चाबुकों को, प्रभु नष्ट कर दिया ।
हे वीर तुम जयवन्त हो, करे स्तुति जिया।। 2।।

प्रभु स्याद् वाद शब्द, अनेकान्त मयी है।
प्रत्यक्ष है प्रमाण से, निर्दोष यही है।।
इससे जो विपरीत है, एकान्त ना सही।
प्रत्यक्ष न प्रमाण न, निर्दोष भी नहीं ।। 3।।

प्रभु सुर असुर से पूज्य, तीनों लोक पूजता।
पर अभक्त नाहीं पूजे, भव में भटकता ।।
पा पूर्ण ज्ञान का प्रकाश, मुक्ति में जायें।
हितकारी परम आप, भक्त शीश झुकाए।। 4।।

भव्यों की रुचि आपमें, समवशरण में राजे।
हे चारू चित्त गुणाभूषण, आपमें साजे।।
स्वकान्ति से निज कान्ति में, निमग्न हुए हो।
सुंदर हो इतने, चंद्रमा को जीत लिये हो।। 5।।

तुम मूमुक्षु जन की, वांछा पूर्ण कराते।
हो गर्व रहित आप, जीव तत्व बताते।।
दोनों ही लक्ष्मी तो साथ, आपके रहती।
है प्रशस्त भाव, जिन की देशना बहती।। 6।।

पर्वत की कटनियों पे, ज्यों हाथी हैं विचरते।
हाथी विशिष्ट जाति का, मद झरने है झरते।।
त्यों अभयदान युक्त, जिन विहार किये है।
दोषों को दूर करने, शास्त्रदान दिये है।। 7।।

हैं मधुर वच एकान्त को, मनोज्ञ बनावे।
हैं स्याद्वाद नय के संग, सत्य सिखावे।।
प्रभु आपका शासन ही तो, कल्याण कारी है।
श्री वीर को नमन किया, संताप हारी है।। 8।।

दोहा

चौबीसों भगवान की,भक्ति करी अपार।
और भक्ति भी करने को, ''स्वस्ति''है तैयार।।

***

प्रशस्ति

चौपाई

प्रभु भक्ति के भाव है उमड़े, भक्ति करने है हम दौड़े।
हुआ भाव नई भक्ति गाऊँ, पर जल्दी से कहां से लाऊँ।।

मुनिसुव्रत प्रभु के चरणों में, आया भाव लिखूँ अब कुछ मैं।
कागज कलम को निमित्त बनाया, एकीभाव का हिन्दी बनाया।।

विषापहार औ जिन चतुर्विंशति, लिख-लिख कर होती अति हर्षित।
दश भक्ति की हिन्दी कीनी, और लिखूँ क्या मन में लीनी।।

हत स्वयं भू को फिर पाया, पद अनुवाद किया हर्षाया।
प्रभु भक्ति में नई-नई भक्ति, प्रभु भक्ति की है अभिव्यक्ति।।

आचार्यों का है उपकार, संस्कृत में की भक्ति तैयार।
प्रभु को दीनी कई उपमायें, तरह-तरह से भक्ति गायें।।

भक्ति संग में ज्ञान भरा है, तभी भक्त भव सिन्धु तरा है।
लिखकर अति ही आनंद आया, याद है प्रभु कुछ और ना भाया।।

उत्तम समय मे उत्तम काम, उत्तम प्रभु को है प्रणाम।
आनंद इतना प्रभु भक्ति में, कैसा सुख होगा मुक्ति में।।

प्रभु गुण से रस्ता मुक्ति का, आत्म शुद्धि औ प्रभु भक्ति का।
चौबीसों प्रभु चरण नमन है, सत्य ज्ञान और कर्म दमन है।।

भक्ति भी है एक तपस्या, मिटे सभी की कर्म समस्या।
सच्ची भक्ति दिल से गाओं, प्रभु चरणों में धोक लगाओ।।

जिन भक्ति बिन दिन बेकार, बिना ध्यान क्या निशि का सार ।
इसी लिये दिन रात में जपने, रात आयेंगे अच्छे सपने।।

बार-बार इसको है पढ़ना, तभी सुखों की सीढ़ी चढ़ना।
जहां जाओं संग में ले जाओं, वही बैठ प्रभु के गुण गाओ॥

माह नवंबर एक नवंबर, शुरु किया खुश भू और अंबर।
माह दिसम्बर पूर्ण किया है, प्रभु भक्ति का स्वाद लिया है॥

मुनिसुव्रत प्रभुजी की शरणा, भक्ति कर भवसागर तरना।
धरती से निकले भगवान, अतिशयकारी इनका नाम॥

सभी भक्त प्रभु के गुण गायें, ''स्वस्ति'' चरण में शीश झुकाये।
सन्मति ज्ञान गुरु को प्रणमूं, उनका भी तो आशीष लेलूं।।

***

।। श्री सहस्त्रनाम जी ।।

।। हिन्दी पद्यानुवाद ।।

शंभु छंद

(प्रस्तावना)

हे नाथ स्वयं के द्वारा ही, तुमने तो स्वयं को पाया है।
इसलिए स्वयंभू नाम मिला, भक्तों ने शीश झुकाया है।।
प्रभु स्वयं-स्वयं उत्पन्न हुए, औ अचिन्त्य नाम के धारी है।
वृत्ति अचिन्त्य ही आई है, करें नमन तुम्हें नर-नारी है।।

शेर चाल (तर्ज - दे दी हमें आजादी...)

हे जगत पति लक्ष्मी भर्त्रे, नमस्कार है।
विद्वान औ वक्ता में श्रेष्ठ, नमस्कार है।।
तुम काम शत्रु को है नाशा, नमस्कार है।
और सुर असुर से पूज्य तुम्हें, नमस्कार है।।

ध्यान कुठार घाति वृक्ष, कर्म को काटा।
संतति संसार काट किया, कर्मों को टाटा।।
हे अनंतजित स्वामी, तुम्हें, नमस्कार है।
इन्द्रिय विजयी हम भी बनें, नमस्कार है।।

मृत्यु को जीत के, महामृत्युंजयी बने।
संसार बंधनों को तोड़, बंधु भी बने।।
प्रभु जन्म जरा मृत्यु नाश, त्रिपुरारी बन गए।
त्रिकाल जो जाना तो, त्रिनेत्री बन गए।।

मोह के आतंक को प्रभु, दूर कर दिया।
ओ मोह रूपीअंधासुर को, नष्ट कर दिया।
आधे जो कर्म नाशे, अर्द्ध नारी ईश हो।
भक्तो का चरण में, झुका रहे शीश हो।।

मोक्ष में बसोगे आप, शिव कहाए।
और पाप रुपी शत्रु नाश, हर कहाए।।
त्रिलोक शांति देने से, शंकर भी कहते हैं।
सुख से हुए उत्पन्न तो, संभव कहते हैं।।

जग मे श्रेष्ठ वृषभ कहे, पुरू भी कहें।
उत्तम गुणों को धारते, गुण धार भी बहे।।
हे नाभि के नंदन, तुम्हें नाभेय भी कहें।
इक्ष्वाकु कुल की शान, मेरे मन में है रहें।।

तुम एक हो उत्तम पुरूष, भक्तों को नेत्र दो।
औ तीन ज्ञान धारी, प्रभु सन्मार्ग को भी दो।।
अरहंत सिद्ध साधु, केवली का मार्ग है।
ये चार शरण मंगल, औ मूर्ति धर्म है।।

पावन पवित्र ब्रह्म, तुम्हें नमस्कार है।
हमको करो पवित्र नाथ, नमस्कार है॥
स्वर्ग से ही आके, उत्पन्न हुए है।
जन्माभिषेक के समय, सुर चरण हुए हैं।।

लेकर के दीक्षा परम शान्ति, प्राप्त किए हो।
पाया है परम पद को, केवलज्ञान लिए हो।।
ईश्वर हुए भक्तों के प्रभु, नमस्कार है।
पाए हो आत्म शुद्ध रूप, नमस्कार है।।

ज्ञानावरण को नाशा, अनंत ज्ञान पा लिया।।
दर्शनावरण को नाश, विश्वदर्श कर लिया।।
सम्यक् क्षायिक को पाने, दर्श मोहनीय नशे।
तेजस्वी वीतराग चरित, मोहनीय नशे।।

प्रभु लोकालोक को हैं देखे, तुमको नमस्कार।
है सुख अनंत वीर्य प्रभो, तुमको नमस्कार।

दानी अनंतलब्धिनंत, तुमको नमस्कार।
भोगोपभोग है अनंत, तुमको नमस्कार।

हे परमयोगी योनि रहित, तुमको नमस्कार ।
हे परम पूत परमऋषि, तुमको नमस्कार।।
विद्या परम को धारते, पर मत को नाशा है।
हे परमतत्व नमः, परमातम आशा है।।

परमेष्ठी हो उत्कृष्ट मार्ग, सबको दिखाते।
है परम ज्योति धारी ज्योति, तुमसे हैं पाते।।
धोया कलंक कर्म का, प्रभु दोष रहित हो।
बंधन को तोड़ा मोह छोड़ा, गुण के सहित हो ।।

होगी सुगति आपकी, मुक्ति की शोभा है।
सुख ज्ञान पाया हो अतिन्द्रिय, आत्म आभा है।।
काया का बंधन तोड़ा तो, अकाय बने हो।
हो योगरहित योगी के, आराध्य बने हो।।

कषाय रहित वेदरहित, तुमको नमस्कार।
हो योगियो से वंदनीय, तुमको नमस्कार।
विज्ञान परम पाया ज्ञान से है, नमस्कार।।
संयम परम है पाया संयम से है, नमस्कार।।

देखा है सूक्ष्म दृष्टि से, परमार्थ आपने।
उपेदश दिया मुक्ति पथ, दिखाया आपने।।
अंश शुक्ल लेश्या का, स्पर्श किया है।।
भव्या भव्य नाश, मोक्षरूप लिया है।।

संज्ञी असंज्ञी दोनों रूप, रहित हुए हो।
निर्मल किया है आत्मा को, सुगति लिए हो।।
भय आहार मैथुन रहित, तुमको नमस्कार।
हे आत्मज्ञान धारी परिग्रह, रहित नमस्कार।।

आहार न लेते हो, तृप्ति आप पाते हो।
संसार में रहते हो, जग से पार जाते हो।।
जन्म जरा मृत्यु दोष, रहित नमस्कार।
अविनाशी अचल अक्षय, गुण धारी नमस्कार।।

प्रभु आपमें गुण इतने हैं, कि कह नहीं सके।
गाए जो जिन्दगी भी, पूरी तो भी ना थके।।
एक हजार आठ नाम, गाऐंगे तेरे।
इन नामों से हम याद करें, सौख्य हो मेरे।।

उपासना आराधना, स्तुति करें तेरी।
भक्ति से ज्ञानी, गाए गान, भावना मेरी।।
पापों की शांति होती है, प्रभु नाम लेने से।
सब दुष्ट कर्म भागते, जिन जाप देने से।।

।। इति प्रस्तावना।।

***

प्रथम अध्याय

चौपाई

श्री मान स्वयंभू वृष संभव, शंभू आत्म भू काटेंगें भव।
स्वयं प्रभा भोक्ता को नमस्ते, विश्व भू विश्वेश नमस्ते।।
विश्वात्मा विश्व लोकेश नमस्ते, विश्वचक्षु विश्वविद नमस्ते।
विश्वविद्येश प्रभू को ध्याऊँ, अक्षर अनश्वर होने आऊँ॥

विश्वयोनि हो विश्वदृश्वा हो, विभु विधाता ज्ञान भवा हो।
विश्वविलोचन विश्वव्यापी हो, शाश्वत विधि वेधा प्रतापी हो।।
विश्वतोमुख विश्वकर्मा ज्ञानी, जगज्येष्ठ विश्वमूर्ति ध्यानी।
नाम जिनेश्वर विश्वद्क पाया, विश्वभुतेश विश्वज्योति जगाया।।

जिन विष्णु धी होय अनीश्वर, अमेयात्म जग पति जगदीश्वर।
विश्वरीश अनंत जित अचिन्त्यात्मा, अबंधन भव्य बंधु की आत्मा।।
ब्रम्हा युगादि पुरूष ब्रम्हमय, शिव पर पर तर हो सूक्ष्म मय।
आप सनातन परमेष्ठी हो, स्वयंज्योति अज अजन्मा हो।।

ब्रम्ह योनि अयोनि पाई, मोह अरि पर विजय जो पाई।
धर्मचक्री दयाध्वज फहराई, प्रशांतारि अंनतात्मा भायी।।
योगीश्वर अर्चित योगी हो, ब्रम्होंद्याविद् ब्रम्ह तत्वज्ञ भी हो।
आप यतीश्वर शुद्ध बुद्ध हो, प्रबुद्ध आत्मा सिद्धांत भी हो।।

शासन सिद्ध, सिद्धांत भी हो, सिद्ध साध्य सिद्धांत विद हो।
ध्येय जगद्धित आप सहिष्णु, अच्युत अनंत हो,हो प्रभविष्णु।।
आप भवोद्भव प्रभुष्णु हो, अजर अजर्य औ भ्राजिष्णु हो।
अव्यय विभावसु को शुभ, गाया, परमज्योति परमात्मा पाया॥
आप पुरातन असंभूष्णु, परमज्योति हो स्वयंभूष्णु।
तीन जगत के परमेश्वर हो, हम भक्तो के प्रभु ईश्वर हो।।

।। इति मदादिदिशतम।। 1।।

***

द्वितीय अध्याय

।। गीता छन्द ।। (तर्ज :- प्रभु पतित पावन...)

हो दिव्यभाषा पूतशासन, दिव्य पूतात्मा बने।
हे पूतवाक हे परमज्योति, श्री पति भगवन बने।।
धर्म के अध्यक्ष शुचि, अर्हंत दम ईश्वर बने।
केवली अरज हो विरजा, तीर्थकृत अर्हंन बने।।

ईशान स्नातक अमल, पूजार्ह हो ज्ञानात्मा।
हे मुक्त धर्म्य प्रजापति, हे शक्ति निष्फल आत्मा।।
हो स्वयंबुद्ध भुवन के ईश्वर, हे निरंजन नंतदीप्ति ज्ञान जी।
हो निराबाध जगत की ज्योति, अचल स्थिति देव जी॥

हे निरूक्त उक्ति अनामय हो, हो अक्षोम्य कूटस्थ भी।
अक्षय स्थाणु अग्रणी, नेता प्रणेता स्वस्थ्य भी।।
हो ग्रामणी कृत न्याय शास्त्र, के धर्मपति धर्मात्मा।
धर्म वृषध्वज वृषाधीश, धर्मतीर्थ कृत आत्मा।।

वृषकेतु वृष वृषपति भर्ता, वृषभांक वृष आयुध लिए।
उद्भव किया वृष हिरण्यनाभि, भूत भावन भव किए।।
भूतात्मा हो भूतभृत, भास्वान भव आतंक हो।
हो प्रभव विभव श्री गर्भस्वामी, हिरण्य गर्भ निशंक हो।।

हे जगतप्रभु हे भूतनाथ, प्रभूत विभव सर्वादि हो।
हे स्वयंप्रभु प्रभुतात्मा, हे सर्वद्रक सर्वज्ञ हो।।
हो सर्वदर्शन सार्व हो, सर्वात्मा लोकेश हो।
हो सर्वविद हो लोकजित, भक्तों के प्रभू परमेश हो।।

हो सुगति सुश्रुत वाक्सूरि, विश्रुत बहुभृतधारा है।
हो विश्वशीर्ष शुचिश्रवा, क्षेत्रज्ञ सुश्रुत तारा है।।
हो विश्वशीर्ष सहस्त्राक्ष औ, सहस्त्रपात को ध्याऐंगे।
हो भूतभव्य भवद् केकर्ता, विश्व विद्या को पायेगें॥

।। इति दिवयादिशतम ।। 2 ।।

***

तृतीय अध्याय

।। चाल छन्द ।। (तर्ज :- तुम सम्मेद शिखर...)

हे ज्येष्ठ प्रष्ठ औ प्रेष्ठ, स्थविष्ट गरिष्ठ स्थेष्ठ।
स्थविर श्रेष्ठ गरिष्ठ, बहिष्ठ गरिष्ठगी अणिष्ठ।।
विश्वभुट् विश्वसृट विश्वभुक्, विश्वनायक हो विश्वजित्।
विश्वासी हो विजितान्तक, असंग विश्वरूपात्मा हो रूपक।।

हो वीर विभव विराग, हो विभय विशोक अराग।
हो विरत विविक्त विजर, हो वीतमत्सर जी जरन॥
हो विनयवान के बंधु, विद्वान विधाता सिन्धु।
कल्मष विलीन कर दीना, सुविधि सुधी का गुण लीना।।

वियोग कृती वायुमूर्ति, क्षान्तिभाक् पृथ्वी मूर्ति।
हो आप सलिल सी आत्मा, हो अधर्मधक् असंगात्मा।।
सुयज्वा योगविद सुत्वा, यजमानात्मा हो तत्वा।
सुत्राम यज्ञ पति निर्मल, यज्ञांग याज्य हो अचल।।

पूजित ऋत्विक अमृतहवि, व्योममूर्ति मंत्रवित हो कवि।
निर्लेप कृतार्थ सूर्यमूर्ति, महाप्रभ मंत्रवित मंत्रमूर्ति।।
मंत्रकृत मंत्री हो स्वतंत्र, तंत्रकृत कृतक्रतु कृतकृत्य।
हो शुभ कृतान्तकृत ज्ञान, मृत्युंजयी नित्य प्रमाण।।

सतकृत्य अमृत्यु पाई, अमृतआत्मा कहलाई।
अमृत उद्भव ब्रह्मात्मा, हो धर्मदम प्रशमात्मा।।
हो ब्रह्मनिष्ठ परब्रह्म, ब्रह्ममेट, महामह ब्रह्म।
हो संभव ब्रह्मजी ज्ञानी, पुरूषोत्तम जी महाज्ञानी॥

सुप्रसन्न पदेश्वर ज्ञानी, हो असंग पुराण जी ध्यानी।
हो अनंत अनंत के धारी, भक्ति हम करें तिहारी।।
नहि संग बने निसंग, प्रशान्तात्मा आप अरंग।
है प्रसन्न आपकी आत्मा , बन गए हो प्रभु परमात्मा।।

शान्ति भाक् आपकी बोली, शांति से भरती झोली।
हो प्रभु कृतार्थ हम आये, चरणों में शीश झुकायें।।

।। इति दिशतम।। 3।।

* * *

चतुर्थ अध्याय

।।शम्भू छन्द।।(तर्ज :- भला किसी का....)

महाशोक ध्वज पद्य संभूति, हो अशोक क स्त्रष्टा तुम।
भक्त कहे तुम पद्यनाभि हो, इत्यपद्येश अनुत्तर तुम।।
कृतक्रिय पद्य विष्टर जितजेय, जगद्योनि स्तुतीश्वर हो।
स्तवनार्ह हृषिकेश गण्य, पद्ययोनि ओ गणाधिप हो॥

पुण्य गुणाकर गुणाम्बोधि हो, गुणनायक हो गणाग्रणी।
गुणाच्छेदी निर्गुण गुणज्ञ तुम, गुण शरण्य हो तुम पुण्यगी।।
पूतवाक हो पूत पुण्यकृत, धर्माराम पुण्य शासन।
पुण्यापुण्य निरोधक गुण्य, पापापेत निजानुशासन॥

विपापात्मा निर्मद निर्मोह, विपाप्म जी वीतकल्मष हो।
हो निर्द्वन्द निरस्तैना औ, निर्निमेष औ निष्क्रिय हो।।
निरूपप्लव हो निष्कलंक हो, निर्द्धित आगम जी विशाल हो।
विपुल ज्योति सुगुप्तात्मा हो, अचिन्त्य वैभव सुसंवृत हो॥

महाविद्य मुनि अतुल परिदृढ़, सुभृत सुनय तत्वविद् हो।
एकविद्य विद्यानिधि धीश, साक्षी विनेता त्राता हो॥
पति पितामह पिता हो पाता, पावन गति को शीश झुकाता।
हो पवित्र कवि हो पुराण तुम, श्री भुवनैक पितामह माता।।

ऋषभपुरू हो वर्षीयान हो, वर्य वरद अगति पुमान हो।
परम हो स्तुत्य गण के ज्येष्ठ, गुणादरी अगण्य मान हो।।
निरूपद्रव हो निराहार हो, हो वरेण्य जी भिषग्वर हो।
हे गुणग्राम जी विहतांतक हो, परम पुण्य नायक भी तुम हो।

सर्व प्रतिष्ठा प्रसवकरी है, तब ही पुण्य धरम करते।
आस्त्रव नहीं निरास्त्रव तुम हो, तभी भक्त पूजा करते।।
शांत पुण्य धी शांत ही रहते , शांति हेतु हम आए है।
सहस्त्रनाम से स्तुति करके, पाप नशाने आए है।।

।।इति महाशोकध्वजदिशतम।।4।।

***

पंचम अध्याय

।।छन्द ।। (चौपाई)

श्री वृक्षलक्षण हो शुभ लक्षण, पुण्डरीकाक्ष जी होय विलक्षण।
पुष्कल श्लक्ष्य सिद्ध संकल्प, सिद्धिद सिद्धात्मा है अल्प।।
पुष्करेक्ष प्रभु हो निरीक्ष तुम, बुद्ध बोध्य महाबोधि भी तुम।
वर्द्धमान वेदांग वेदवित्, वैद्य महर्द्धिक जातरूप तुम।।

वेद वैद्य सिद्ध साधन पाय, हो स्वयंवेद्य तम्हें बतलाएं।
व्यक्त वाक् व्यक्त है शासन, हो युगादि कृत है अनुशासन।।
वदतांवर हो विदांवर हो, युगाधार औ अनादि निधन हो।
जगदादिज युगादि कहाए, आप अतीन्द्रिय धीन्द्र बताए।।

श्री महेन्द्र अतीन्द्रियार्थ दृक, प्राप्त महाकल्याणक पंचक।
श्री महान कारण हो कर्ता, महित महेन्द्र महाज्ञान भर्ता।।
अनंतर्द्धि भवतारक हो तुम, अचिन्त्यर्द्धि परमेश्वर हो तुम।
पारग गहन गुह्य परार्घ्य, हो अगाद्य उद्भव का अर्घ्य।।

अमेयर्द्धि हो प्राग्य समग्रधी, अभ्यग्र प्रत्यग्र अग्रज की धी।
अग्र हो अग्रिम अग्रज स्वामी, महातपा महातेजा नामी।।
महायथा महासत्व महादय, महाधृति महावीर्य महोदय।
महासंपत महाबल महाधामा, महाशक्ति महाज्योति नामा।।

महाभूति महाद्युति महानीति, महामति महाभाग महाक्षान्ति।
महाप्राज्ञ महाकवि महाकीर्ति, महावपु महादान महाकान्ति।।
महानन्द महायोग महागुण, महाप्रभु महामहपति है वण।
आप अनिन्द्रिय आप महेश्वर, महाप्रातिहार्याधीश ईश्वर।।

अहमिन्द्र अर्च्य आप अतीन्द्र, महामहा भक्तों के इन्द्र।
हम विवेद पुण्य नाम को गाए, प्रभु चरणों में शीश झुकाए।।

।।इति वृक्षादिशतम्।।5।।

***

षष्ठम अध्याय

।।चाल छन्द।।(ऐ मेरे वतन के लोगों....)

महामुनि महामौनी ध्यानी, महादम महाक्षम महृयज्ञानी।
महाकांतिधर महाशील जी, महायज्ञ महामख अधिपा जी।।
महामैत्रीमय महोपाय, महाकारूणिक मंता आय।
महायति महामंत्रा महेज्य, महाघोष की करते जय-जय।।

महानाद महोमय धुर्य, महासांपति और महौदार्य।
योगात्मा महात्मा क्षान्त, महितोदय गुरु अनंत।।
महाक्लेशांकुश वशीशूर, महाभूपति महाव्रतपुर।
महापराक्रमी महागुणाकर, महायोगीश्वर जी अध्वर।।

महाभवाब्धि हो संतारी, महासांधामा कामारि।
महाक्रोधरिपु महाधर्म, दान्तात्मा आत्मा कर्म।।
महाध्यान पति औ अमेय, हर शमीश्रवा असंख्येय।
महाध्वरधर हो महाव्रतपति, महादेव प्रधान प्रकृति।।

महाकर्मा रिहा महर्षि, विष्ठर आत्मज्ञ जी हर्षी।
हो परमोदय प्रशमाकर, हो कामधेनु योगीश्वर।।
हो दम तीर्थेश जी काम्य, हो परमोदय जी सौम्य।
हो सर्वक्लेश पह आत्मा, वंदू मै अप्रमेयात्मा॥

साधु सब दोषों का हर, क्षेमकृत क्षेमशासन को कर।
प्रक्षीण बंध प्रणतेश्वर, हो परम प्राण परमेश्वर।।
हो आप प्रभु जी अचिन्त्य, हो कामहा जग में संत।
विष्टर मोहमय को ध्याऊं, मैं प्रणव शमात्मा पाऊं।।

प्राणद प्रमाण हो दक्ष, दक्षिण अघ्वर्यु पक्ष।
नंदन आनंद हो वंद्य, अभिनन्दन कामद वंद्य।।
हो प्रणत ज्ञानसर्वज्ञ, हो प्रक्षीणबंध हम अज्ञ।
हो आप अरिंजय प्रणिधि, श्रुतआत्मा भक्तों की निधि।।

निंदा नहीं आप अनिंद्य, सुर नर चरणो में संत।
महामोहाद्रि जी सूदन, हो आप महेशिता भगवन्।।

।। इति महामुन्यादिशतम।।6।।

* * *

सप्तम अध्याय

।। चौपाई ।। (तर्जः- चालीसा)

असंस्कृत अंतकृत हो प्राकृत, कांतगु कांत जी वैकृतांतकृत।
जितक्लेशजी होय जितान्तक, अजित अमित शासन में हो नत।।
जितमित्र हो आप अभीष्टद, परमानंद सुखद हो सुहृत।
जितकामारि जित क्रोधी हो, हो जिनेन्द्र उत्तम बोधि हो।।

परमानन्द मुनीन्द्र हो कामन, नाभिनंदन सुधी दवीयान।
अधिप अधिगुरु आप सुमेधा, दुराधर्ष स्वामी हो गोप्ता।।
प्रत्यय अक्षय क्षेमधर्मपति, क्षेमी क्षमी औ धातु सदा गति।
ज्ञान गम्य हो ज्ञान निग्राह्, श्री निवास हो सुनय अग्राह्य।।

हो निरूत्सुक सौम्य निरूत्तर, अनाश्वान सुमुख दें उत्तर।
दुंदुभिस्वन महेन्द्रवन्द्य हो, हो अभेद्य अनत्यय वंद्य हो॥
नाभेय नाभिज आप यतीन्द्र, हो अजात विक्रमी योगीन्द्र।
शिष्ट शिष्टभुक् मनु हो सुव्रत, सत्यवाक् जी अनणुसदातृप्त।।

चतुरानन हो चिन्तामणि हो, चतुरास्य जी सत्य सत्याशी हो।
सत्यपरायण सत्य है शासन, सत्य विज्ञान है सत् अनुशासन।।
सदायोग सामाद्य सुहित हो, सदाभोग स्थेयान नमित हो।
सत्य संधान सदाविद्य हो, अणो अणीयान सदा सौख्य हो।।

गुप्तिभृत सुगुप्त सदोदय, लोकाध्यक्ष गरीय महोदय।
दूरदर्शन हो आप दमेश्वर, चतुर्वक्त्र सकृती जी ईश्वर।।
सुसंस्कार दिए विशिष्ट, सत्यात्मा हो सबके इष्ट।
नेदीयान सदाशिवधारी, दर्शचतुर्मुख सुन्दर भारी।।

हम ईज्यार्य की पूजा करते, आप अनद्यसुखी जग करते।
अमित ज्ञान प्रभु हम भी पाऐं, शत-शत चरणों शीश झुकाऐं।।

।। इति असंस्कृतादिशतम ।। 7 ।।

* * *

अष्टम अध्याय

।। शम्भू छंद ।। (भला किसी का कर ना सको तो...)

वृहद वृहस्पति वामी वाचस्पति, हो उदारधी हो धीमान।
हो कृतज्ञ तुम हो गिरांपति, कृत लक्षण हो लक्ष्मीवान॥
नैकरूप हो नयो तुंग तुम, नैक धर्मकृत हो तुम एक।
नैकात्मा हो दयागर्भ हो, पद्मगर्भ हो स्वस्थ्य जिन नैक॥

जगद्‌गर्भ हो हेमगर्भ हो, आप सुदर्शन समाहित हो।
दृढ़ीयान इन अमोघवाक् हो, अमोघाज्ञ औ अधिप भी हो॥
धर्मयूप हो दयायाग हो, धर्मनिधि धर्म घोषण हो।
आप प्रभास्वर रूप मनोहर, धीर गंभीर जिन शासन हो॥

धर्म चक्रायुध आप मुनिश्वर,देव ईशिता शंकर हो।
हो अविज्ञेय अप्रतर्क्यात्मा, आप अनंत अगोचर॥
हो अमोघ शासन समयज्ञ, हो अलेप निर्मल त्यागी।
स्वस्थ्य भाक् हो आप जितेन्द्रिय , नीरजस्क हो देव दमी॥

वीतराग हो आप वशेन्द्रिय, निः सपत्न अनघ मंगल।
नाकैक तत्व द्रक परमान्द्र हो, क्षान्ति परायण हो जंगल॥
निष्कलंक है आत्म तुम्हारी, आप सुभग विमुक्तात्मा हो।
धामर्षि अनीद्रक हो दिष्टि, मुर्तिमान अगम्यात्मा हो॥

उपमाभूत हो शिवददान्त, त्रिजग वल्लभ शेमुशीश हो।
हो अभ्यर्च हो त्रिजग मंगल, कर्महा सुस्थित भक्त ईश हो।।
हो त्रिकाल अध्यात्म गम्य हो, दान्त परात्पर गतस्पृह हो।
परत् मज्ञ को योगिवंदित, सदाभावी तुम निष्पृह हो॥

हो अमूर्त सर्वत्रग भी हो, त्रिजगत्पति पूज्यांघ्रि हो।
त्रिलोक शिखामणि आप विराजे, अमोघ योगविद् रत्नगर्भ हो।।
ज्ञान गर्भ हो आप मनीषी, त्रिदशाध्यक्ष धिषण भी हो।
आप निरूद्धव हो प्रशान्त भी, मलहा सुरूप आभूषण हो॥

(दोहा)

हो विषयार्थद्रक आप जी, विषयों से हो दूर।
भक्त को शरणा लीजिए, सुख पाऊँ भरपूर।।

॥ इति वृहदवृहस्पतिदिशतम॥ 8 ॥

* * *

नवम अध्याय

॥ चाल छन्द ॥ (तुम सम्मेद शिखर को....)

हे त्रिकालदर्शी पूज्य, दृढ़व्रत शान्ति जिन पूर्व।
हो आदिदेव युग ज्येष्ठ, श्रेयोनिधि पृथु प्रतिष्ठित॥
सर्वलौकेक सारथि पुराण, पुरुदेव प्रकृति कल्याण।
युगमुख्य हो कल्याण वर्ण, लोकज्ञ सुवर्ण वर्ण॥
अधिदेव कल्याण लक्षण, विकल्मष आप विलक्षण।
हे जगद् बंधु जगन्नाथ, हे जगत विभु द्युम्नाभ॥
कलीलघ्न श्री शान्तिनिष्ठ, कुंभनिभप्रभ अप्रतिष्ठ।
हो युगादि स्थिति देशक, हो देव कलाधर शासक॥
हो गोप्य चराचर पुष्टिद, गाूढात्मा शान्तिद् शिवप्रद।
हो सद्योजात गूढ़गोचर, श्री ज्वलज्ज्वलन श्री सुप्रभ॥
आदित्य वर्ण भर्माभ, हो अनल प्रभु हेमाभ।
सुप्रभ जी बालर्काभ, हो तप्त चामीकर प्रभ॥
विकलंक पूर्व तपनीय, लोकधाता आप हो जपनीय।
लोकेश स्वंभू स्पष्ट, हो कांतिमान भी पुष्ट॥
निष्टप्त कनकच्छाय, शिष्टेष्ट सवर्ग में आया।
हो हिरण्यवर्ण जगद ग्रजजी, क्षम शत्रुघ्न आप पृथित जी॥
तप्त जाम्बूनद द्युति पाई, शान्तिकृत शासिता आई।
हो आप प्रशास्ता प्रथीयान, दीप्त कल्याणात्मा दे दान॥
सर्वलोकातिग सुस्थिर, स्थाणु पुरूष स्थावर।
कृत पूर्वांग बिस्तर प्रदीप्त, हाटक द्युति भक्त के आप॥
सुद्यौत कलधौत कामिदप्रद, हो कलातीत के शुभपद।
हो सन्निभ कनत्कंचन जी, हो अधिष्ठान हृदय जी॥
हो पुराणाद्य जी जग में, हो जगद्वितैशी मग में।
विभु नाम तुम्हारा सुन्दर, हो कनक प्रभु शुभ अंदर॥

॥ इति त्रिकालदर्शीदिशतम॥ 9॥

***

दशम अध्याय

॥ शेर चाल ॥ (दे दी हमें आजादी....)

दिग्वासा वातरशन हो, हो ज्ञान चक्षु आप।
निर्ग्रंथेश हो निराशंस हो, हो अमित ज्योति आप॥
हो तेजो राशि अमोमुह अनन्तौज भी।
ज्ञानाब्धि शीलसागर हो, औ धर्मराज भी।।

हो ज्योतिमूर्ति तमोऽपह हो, विघ्न विनायक।
हो जगच्चूड़ामणि धर्म, साम्राज्य नायक॥
शंवान निरंबर हो, हो अखिल ज्योति भी।
लक्ष्मीपति मुमुक्षु हो और जगज्योति भी॥

हो प्रभामय प्रजाहित, अतन्द्रालु भी।
मोक्षज्ञ हो जिताक्ष हो, अनिन्द्रालु भी॥
प्रशांत रस शैलूष हो, और मूलकर्ता भी।
जिनमन्मथ हो प्रभुजी आप, भक्तकर्ता भी॥

हो श्रायशोक्ति निरूक्तवाक्, आप प्रवक्ता।
हो विश्वभाव वित सुगत की, शरण में आता॥
हो जागरूक कलिघ्न प्रभु, वचनामीश भी।
हत दुर्नय श्री श्रित पादाब्ज और भक्त श्रीश भी॥

हो लोकालोक के प्रकाशक, सुतनु वीत भी।
हो लोकपति लोकचक्षु, धीरधी तुम्हीं॥
निर्विघ्न हो सन्मार्ग हो, हो सत्य सुनृतवाक।
निश्चल हो मारजित हो, प्रज्ञा पारमित भी आप॥

श्रेयान हो वागीश्वर, शान्तारि बतायें।
हो कल्पवृक्ष अनंत शक्ति त्र्यक्ष को पाये॥
समुन्मूलित कर्मारि, जी दयानिधि हो।
हो सूक्ष्मदर्शी जितानंग, पुण्यराशि हो।।

हो लोकवत्सल प्रांशु, कर्मण्य अच्छेद्य हो।
कर्मठ त्रिनेत्र धर्मपाल, त्रिपुरारि हो॥
हे नियमितेन्द्र प्राज्ञयति, भद्रकृत भी हो।
सुखसाद भूत जगत्पाल, वर प्रद भी हो॥

अभयंकर त्रिलोचन, उत्सन्न दोष हो।
हो धर्माचार्य अनामय, नहि कोई शेष हो॥
हो तुम कृपालु, हेयादेय विचक्षण भी हो।
शुभमय केवलज्ञान जी, वीक्षण भी हो॥

हो भव्यपेटक नायक, भदंत बुद्ध भी।
समंतभद्र धर्मदेशक, और शुद्ध भी॥
निष्किंचन हो त्रयम्बक, हो कर्मशत्रुघ्न।
हो दीप्ति तेजोमय हो, जी मलहन॥

॥ इति दिग्वासाद्यष्टोत्तर शतम्॥ 10॥

* * *

॥ उपसंहार ॥

तर्ज नरेन्द्रं फणीन्द्रं छंद (भुजंग प्रयात)

जिनेन्द्र प्रभु हो, सहसनाम वाले।
आगम के ज्ञाता, भी इनको ही ध्याले॥
विद्वान कहते, जो मानव है ध्याता।
आतम पवित्र हो, बुद्धि को पाता॥ 1॥

वर्ण्य से कहते, जो वाणी अगोचर।
फिर भी प्रभु भक्त, जपते गुणाकर॥
संदेह नाहीं, वे फल इच्छित पाएं।
सहस नाम पढ़ते, और शीश झुकाऐं॥ 2॥

जगत वैद्य कहते, जगत के हो बंधु।
जगत के हो रक्षक, जगत हित के सिन्धु॥
जगत ज्ञान ज्योति, जगत के प्रकाशी।
तुम्ही ज्ञान दर्शन, जगत के विकासी॥ 3॥

त्रिविध मोक्षमार्ग, चतुष्टय के धारी।
और आतम उद्धारक, पन कल्याणधारी॥
छह द्रव्यों के ज्ञाता, नय सत बताऐं।
सम्यक्त्व आदि, गुण अष्ट पाए॥ 4॥

नवक्षायिक लब्धि, हो आतम बिहारी।
दशधर्मधारी हो आतम निहारी॥
महाबल के आदि, दस भव से तपस्या।
करी आपने और, काटी समस्या॥ 5॥

मुझ भक्त की रक्षा, प्रभु आप करना।
संसार संताप को, आप हरना॥

प्रभो आपकी नामावलि, की ये माला।
है स्तोत्र सुंदर, कटे कर्म जाला॥ 6॥

आराधना साधना, हम भी हैं करते।
प्रसन्न हो प्रभुवर, अनुग्रह को करते॥
भक्त स्तोत्र जो, भक्ति से करता।
आतम पवित्र हो, सौख्य के भरता।। 7।।

कल्याण पात्र, बने पुण्य इच्छुक।
निर्मल सी बुद्धि, पावेगा शुभेच्छु॥
प्रभो नाम माला, जो भक्ति से गाए।
बने इंद्र स्वर्गों में, मुक्ति में जाए॥ 8॥

भक्ति से इंद्र ने, की स्तुति।
विविध देश बिहारी, की करते है भक्ति॥
पवित्र गुणों की, प्रशंसा औ स्तुति।
करे निर्मल बुद्धि, औ पावे समृद्धि॥ 9॥

पुरूषार्थ सम्पन्न, स्तवन करेगा।
मुक्ति का सुख तो, पाठक ही लेगा॥
करे तीन लोको के, प्राणी भी वंदन।
पर वे नहीं करते, जग के हैं चंदन॥ 10॥

सभी प्राणी योगी भी, जिनको हैं ध्याते।
वे आतम के ध्यानी, नहीं पर को ध्याते॥
नमन दुनिया करती, स्वयं को वे ध्याते।
वे निज में ही रहते,जन कल्याण पाते॥ 11॥

शत इन्द्रों से वंदित, करम घाति नाशा।
चतुष्टय अनंत पा, आतम विकासा॥
सूर्य प्रभु भक्त, पद्म खिलाये।
त्रिलोक के स्वामी, हम सर को झुकायें॥12॥

नम्री करे मानस्तम्भ जनों को।
उनसे हैं वंदित, है भाए मनों को॥
अनुपम विभूति, समवशरण में आई।
निर्दोष प्रभु जी, तेरी भक्ति गाई॥ 13॥

पढ़े भक्त भक्ति से, ध्याते हैं तुमको।
नमन होवे 'स्वस्ति' का, पाते हैं तुमको॥
प्रभु नाम गा के, मैं प्रभु भक्ति कर लूँ।
इसी से बनाया, मैं पापों का हर लूँ॥ 14॥

॥ दोहा ॥

नाम प्रभु का लेने से, कटते पाप हजार।
इसीलिये निशदिन पढ़ो, छूटे कर्म प्रहार॥
आचार्य जिनसेन से लिये, लिखे सहस प्रभुनाम।
पद्मरूप में है किया, "स्वस्ति" ने प्रभु नाम॥
अक्षर पद मात्राओं में, हुई है गलती मान।
शुद्ध भाव से ही पढ़ो, क्षमा करें श्रीमान॥

* * *

॥ ईर्यापथ भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परमपूज्य आर्यिकारत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माता जी)

॥ शंभु छंद ॥

अरिहन्त प्रभु की स्तुति करने, त्याग परिग्रह आया हुँ।
दी है परिक्रमा नमस्कार कर, मन से स्तुति गाया हूँ॥
प्रशस्त भाव हों ज्ञान सूर्य जी, निन्द्रा से दूर तुम रहे।
इन्द्र से वंदित अरिहंतो की, सदा स्तुति भाव रहे।।1॥

लक्ष्मी सहित और दोष रहित हो, अनंत रचना तुम पर हो।
अद्वितीय हो आदितीर्थ हो, उत्सव सदा चरण में हो॥
मणि निर्मित त्रिलोक के भूषण, अकृत्रिम जिन मंदिर हैं।
शरण में आके करूँ वंदना, वे तो अति ही सुंदर हैं॥2॥

स्याद्वाद गंभीर परम है, सफल चिन्ह जिनका शासन।
अद्वितीय लक्ष्मी है दासी, आत्म ध्यान जिनका आसन॥
तुम त्रिलोक के अधिपति हो प्रभु, चक्री इन्द्र खड़े द्वारे।
हो जिन धर्म की जग मे जय जय, जय जयकार करें सारे॥3॥

वीतराग लक्ष्मी से युक्त प्रभु, मुख का दर्शन पावन है।
मुक्ति लक्ष्मी का दर्शन हो, प्रभु दर्शन से सावन है॥
जिन मुद्रा के दर्श रहित, मानुष को मोक्ष ना मिलता है।
वीतराग प्रभु के दर्शन बिन, हृदय कमल ना खिलता है॥4॥

देवाधिदेव के चरण कमल के, दर्श से नेत्र ये सफल हुये।
तीन लोक के तिलक प्रभु,सागर सा भव अब चुल्लू किये॥5॥
तेरे दर्श से मेरे भगवन, तन यह पावन होता है।
नयन हो निर्मल, धर्म तीर्थ, स्नान का सावन होता॥ 6॥

सर्वजीव हैं जगत में जितने, भव्य का हृदय खिलाते हो।
सूर्य समान महावीर प्रभु, नमन करूं सब जानते हो।। 7।।
देव पूज्य हो दोष रहित हो, और गुणों के सागर हो।
मोक्ष मार्ग बतलाने वाले, नमन हमारा हर पल हो॥ 8॥

परम हो ईश्वर वीतरागी, सर्वज्ञ प्रभो देवाधिदेव।
हे महानुभाव त्रिलोकीनाथ, जिन देव प्रभो की करें सेव॥
हे वर्धमान हम वर्तमान में, शरण तुम्हारी प्राप्त हुये।
बने धर्मवान हो कर्महान, चरणों को तेरे आज छुये॥ 9॥

प्रभु गर्व हर्ष और द्वेष मोह, जरा जन्म मरण को है जीता।
कषाय ईर्ष्या, परीषह जीते, जयवन्त प्रभु की है गीता॥10॥

त्रैलोक्य हितंकर धर्म चक्र, की सूर्य प्रभा मौलि पड़ती।
प्रभु चरण हों लाल तभी, चूड़ामणि की आभा खिलती॥11॥

त्रिलोक समूह पर चूड़ामणि, हे भगवन आपकी जय-जय-जय।
जगत भव्य के हृदय विकासन, सूर्य तमस हरजी हय हय हय॥
हे स्वामी अविनाशी शान्ति को, प्राप्त कराये बारं बार।
आप मित्र हो अद्वितीय हो, रक्षक ना तुम सा भरतार॥ 12॥

॥ दोहा॥

सच्चे मन से जो करें, भक्ति स्तुति गान।
कर अंजलि से शिरोनति, धन्य हो जीवन जान॥ 13॥

जन्म मरण से छूटना हो, प्रभु चरणन को ध्यायें।
सच्चो प्रभु न यदि मिले, और कहीं ना जाये॥
अन्न यदि खाने, न मिले, विष कोई न खाये।
सच्चो देव न मिल पाये, और कहीं क्यों जायें॥14॥

॥ शंभू छंद ॥

आभूषण बिन सुंदर इतने, उपमा कोई न दें पायें।
जो भी देखे प्रभु आपको, आनन्द अश्रु झर जाए॥
हाथ जोड़कर शीश झुकाएं, रोम-रोम पुलकित होता।
दर्शन मन संतुष्टि पावे, अदभुत रूप भी लख आता॥15॥

शत्रु को नष्ट करे भगवन, तीनो लोकों के ज्ञाता हैं।
तुम त्रिलोक जीवों के रक्षक, औ कल्याण के दाता हैं॥
मोक्ष लक्ष्मी की निधि पाई, देव भी श्रेष्ठ तुम्हें माने।
शरण देने में निपुण कुशल प्रभु, आचरण शरण पाने॥16॥

हे त्रिलोक के स्वामी मौलि, किरण चरण में पड़ती है।
इन्द्र नरेन्द्र करें भक्ति को, भाव की कलियां खिलती है॥
कर्म रूपी वृक्षों को जड़ से, उखाड़ आपने फेंक दिया।
शान्ति देने वाले चन्द्रा, चरण में हमने नमन किया।।17।।

मैंने प्रमाद से गमन किया, जिससे जीवों का घात हुआ।
इसी दोष के, तजने हेतु, ईर्यापथ को छोड़ दिया॥
गमन काल में हुये दोष का, पश्चाताप मैँ करता हूं।
जीव अहिंसा पालन हेतु, हिंसा को मैं तजता हूं॥18॥

यदि प्रमाद से राह चलन में, एकेन्द्रिय का घात हुआ।
पीड़ा दी है देख चला ना, ईर्या समिति नही किया॥
गुरु भक्ति से पाप ये मेरा, मिथ्या हो प्रभु नश जाये।
आगे शक्ति ऐसी पाऊं, निरतिचार व्रत पल जायें॥19॥

॥ अंचलिका ॥

शीघ्र गमन उपयोग रहित हो, गमन क्रिया प्रारंभ समय।
खड़ें होने में, सहज चलन में, पग संकोच विस्तार समय॥

मूल स्कंधादि बीजों पर, औ हरितकाय पर गमन किया।
इस द्विति चतुपन इन्द्रिय, हुई विराधना रोध किया॥
हुआ परस्पर संपीडन भी, छिन्न भिन्न औ विदीर्ण किया।
मूर्छित कीना, जाने से रोका, उसका ही प्रतिक्रमण किया॥
जब तक मैं अरिहन्त देव को, नमन याद पूजा करता।
तन ममता को त्याग दिया है, पाप दुष्ट चेष्टा हरता॥
चलने फिरने उठने बैठने, में भी यदि प्रभु दोष लगे।
अब तेरी भक्ति से प्रभु जी, दोष तुरत ये शीघ्र भगे॥
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण, ईर्या पथ से चला नही।
औ प्रमाद से इत उत देखा, जीव घात तो हुआ सही॥
किया विघात अनुमोदन कभी, तो यह दुष्कृत मिथ्या होवे।
चरण कमल की भक्ति करके, धर्म बीज हृदय बोवे॥
राग द्वेष से मालिन ये मन है, पाप उत्पन्न करे भारी॥
तीन लोक के अधिपति जिनवर, चरण आपकी अब आया।
अपनी निन्दा करता हुआ मैं, दुष्ट कर्म तजने आया॥ 20॥

॥ दोहा॥

घाति कर्म से रहित हो, अनंत चतुष्टय धार।
श्री अरिहंत के चरण में, नमन हो बारंबार॥

***

सिद्ध भक्ति

हिन्दी अनुवाद

परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माता जी

शंभु छंद

आत्मज्ञान दर्शन स्वभाव संग, सिद्ध परम परमेष्ठी हैं।
नमन आत्म भावों से करता, नष्ट हुई कर्म प्रकृति है॥
मुक्ति प्राप्ति की भावना मेरी, सिद्ध स्वभाव को पाना है।
पत्थर में ज्यों सोना रहता, आत्म में भगवन जाना है॥

दोहा

योग्य उपादान होय जब, कारण भी मिल जाये।
आतम परमातम बने, सिद्ध प्रभु गुण गाये॥ 1॥

शंभु छंद

बुद्धि सुख गुण नष्ट होय जब, ऐसा कहता है कोई और।
तब ही तप संयम ना करते, घूमते गतियां चारों ओर॥
स्वयं किये हैं कर्म शुभाशुभ, उनके क्षय से होता मोक्ष।
दर्शन ज्ञान स्वभाव वाला है, संगम है उत्पाद व्यय ध्रौव्य॥

दोहा

सिकुड़न औ विस्तार है, आत्म गुणों के संग।
इन गुण से है मान्यता, बाकी अन्य के रंग॥ 2॥

शंभु छंद

अंदर बाहर निर्मल कारण, रत्नत्रय की खड्ग मिली।
प्रबल प्रहार पाप पर कीना, अद्वितीय फिर वस्तु मिली॥
केवल ज्ञान दर्श सुख बल संग, लब्धि क्षायिक पाई है।
भामंडल औ छत्र सिंहासन, शोभा न्यारी आई है॥

दोहा

आश्चर्य कारी श्रेष्ठ गुण, हर पल शोभा बढ़ाये।
ऐसे शुद्धातम प्रभो, शत् शत् शीश झुकाये॥ 3॥

शंभु छंद

सिद्ध प्रभु इस लोकालोक को, जाने देखे एक समय।
फिर भी पाते आत्म सुखों को, अपर ज्योति है ज्योर्तिमय॥
मोह अंध को नाशा प्रभु ने, सब प्राणी संतुष्ट किया।
सबके स्वामी संचित ज्ञान से, जन-जन का है भला किया॥

दोहा

आत्म से आत्म के द्वारा ही, लीन रहो दिन रैन।
प्रभु भक्ति से आता है, मेरे मन को चैन ॥ 4॥

शेष बची जो कर्म प्रकृतियां, नाश उन्हें भी कर दीना।
सूक्ष्मत्व अवगाह अगुरूलघु, पावन गुण को पा लीना॥
अविनाशी जो स्वभाव आतम, उससे ही प्रभु युक्त हुये।
शुद्ध रूप लब्धि प्रभाव से, कर्म जगत से मुक्त हुये॥

दोहा

उर्ध्वगमन ही स्वभाव है, सिद्ध प्रभु का जान।
एक समय में ही गये, लोक अग्र स्थान॥ 5॥

शंभु छंद

नये शरीर का कारण छूटा, नया आकार ना बनता है
किंचित न्यून हैं, पूर्व तनु से, प्रतिकृति सुंदर लगता है॥
भूख प्यास ज्वर मरण बुढ़ापा, श्वांस खांसी आपत्ति नहीं।
तीव्र मूर्च्छा औ हो अनिष्ट ना, दुख कारण अब बचे नहीं॥

दोहा

महिमा सिद्ध महान की, जान सके न कोय।
सिद्ध बने तब ज्ञात हो, सिद्ध का सुख क्या होय॥6॥

शंभु छंद

सिद्ध प्रभु का सुख भी श्रेष्ठ है, उपादान आतम कारण।
बाधा रहित विशाल है अनुपम, स्वाभाविक अतिशय कारण॥
विषय और प्रतिपक्षी रहित है, वृद्धि हानि नहीं होती।
अमित है शाश्वत, सर्वकाल में, नहीं मिले दुख की है गति॥

दोहा

श्रेष्ठ अनंत है सुख तुम्हें, स्वयं सिद्ध स्वाधीन।
पर से कुछ ना चाहिये, स्वयं स्वयं में लीन॥ 7॥

शंभु छंद

रोग नहीं तो दवा व्यर्थ है, स्वयं प्रकाशित दीप से क्या।
भूख प्यास न लगती प्रभु को, अन्न पानी औ रस से क्या।
अपवित्रता होय ना प्रभु में, चंदन गंध माल से क्या,
थकान निद्रा होय ना प्रभु में, कोमल शय्या करेगी क्या।

दोहा

पर आलम्बन से रहित, आत्म सुखों का स्वाद।
हरपल करते सिद्ध प्रभु, सिद्ध शिला में वास॥ 8॥

शंभु छंद

सम्यक् संयम ज्ञान चरित नय, तप संयम से सिद्ध हुये।
विश्व देव यश चहुं दिश फैले, ऐसे प्रभु का ध्यान किये॥
दीक्षा समय में तीर्थंकर भी, स्तुति आपकी, गाते है।
ऐसे सिद्ध अनंता प्रभु को, हम भी शीश झुकाते है॥

दोहा

भूतकाल में हो चुके, होगे भविष्य काल।
वर्तमान में हो रहे, वंदू सिद्ध त्रिकाल॥ 9॥

सिद्ध भक्ति कायोत्सर्ग करता, आलोचन भी कीना है,
सम्यग्ज्ञान दर्श चारित युत, अष्ट कर्म तज दीना है।
अष्ट गुणों संग उर्ध्व लोक में, अग्र भाग पर राज रहे,
तप से सिद्ध हो नय से सिद्ध भी, चारित सिद्धी काज रहे।
भूतानागत वर्त संबंधी, सब सिद्धों की अर्चा की,
पूजा वंदना नमस्कार कर, सिद्ध प्रभु की चर्चा की।
दुखों का क्षय हो कर्म का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो,
समाधि मरण हो सुगति गमन हो, जिन गुण की सम्पत्ति हो।

दोहा

प्रेरित भक्ति से हुआ, दोष रहित निर्दोष।
कायोत्सर्ग कर ध्यान से, श्रेष्ठ सुखों को पोष॥ 10॥

***

॥ चैत्य भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माताजी)

॥ शंभु छंद ॥

गौतम गणधर द्वारा की गई, स्तुति अद्‌भुत शाली है।
पुण्य बंध औ पाप को नाशन, सत्य प्रकाशन वाली है॥
मुक्ति के कारण जगजीवन हित, जिनवर जी को नमस्कार।
महावीर प्रभु की महिमा गाऊं, नमन करूं मैं बारंबार॥ 1॥

अंतरीक्ष में स्वर्ण कमल पर, चलने वाले हैं जिनवर।
अमर मुकुट के रत्नजाल से, पूजित हैं प्रभु जी मनहर॥
अहंकार से भ्रमित जीव, चरणों में जो भी आ जाता।
बैर भाव तज श्रद्धा करता, जय-जयकार गीत गाता॥ 2॥

नरक छुड़ावें स्वर्ग में भेजे, जैन धरम करता कल्याण।
अरिहंत प्रभो का कहा हुआ है, जयवंत होवे नय औ प्रमाण॥
द्रव्य और पर्याय दिखावे, शब्द अर्थ और ज्ञान सहित।
रक्षा करता पाप से सबकी, धारण करता होय सुहित॥ 3॥

स्याद् अस्ति और स्याद् नास्ति की, लहरें जिसमें आती हैं।
व्यय उत्पाद ध्रौव्य द्रव्य सब, केवल ज्ञान में दिखती है॥
मुक्ति द्वार पे मोह की सांकल, खोल मोक्ष को देता है।
कर्म धूलि तज, व्याधि रहित कर, जय-जयकार प्रणेता है॥ 4॥

॥ दोहा ॥

अरिहंत सिद्धाचार्य संग, पाठक साधु जान।
वंदनीय हो जगत के, मैं भी करूँ प्रणाम॥ 5॥

दोष अठारह से रहित, घाते घातिया चार।
अरिहंतो को भक्ति से, प्रणमूँ बारंबार॥ 6॥

क्षमा आर्जव गुण सभी, जग हित कारण होय।
पहुंचावे शुभ धाम में, नमन करें कर दोय॥ 7॥

वंदनीय त्रिलोक में, श्री अरहंत भगवान।
ज्योर्ति व्यंतर भवन सुर, नमैं चरण में आन॥ 8॥

मनुज लोक के चैत्य को, करता नित्य प्रणाम।
मन वच काया भाव से, प्रभु चरणन विश्राम॥ 9॥

॥ चौपाई ॥

जगत् रहित तीर्थंकर मंदिर, तीन लोक के अधिपति जिनवर।
जगत ताप तज शान्ति पाऊं, इससे चरण में शीश झुकाऊं॥10॥

स्तुति कीनी हमने जिनकी, पंच महागुरू जैन धरम की।
जिन आगम जिन चैत्य चैत्यालय, बुधजन के रत्नत्रय आलय॥11॥

कृत्रिम अकृत्रिम हैं त्रिलोक में, कान्ति युक्त हैं जिन मंदिर में।
देव मनुज से पूजित प्रतिमा, भाव सहित मैं वंदन करता।।12॥

तन का कांति मंडल फैला, तीन लोक भक्तों का मेला।
उपमा रहित विभूति देवें, प्रतिमा वंदन हम कर लेवें॥13॥

वस्त्राभूषण रहित है भगवन, निज स्वभाव में स्थित हैं जिन।
प्रतिमा गृह की प्रतिमाओं को,नमूं मैं निशदिन पाप शान्त हो॥14॥

त्याग कषाय शान्त है मुद्रा, सुन्दर भगवन, कहते सदा।
जिन प्रतिमा को नमन हूं करता, जग तजने विशुद्धि धरता॥15॥

जिन प्रतिमा की भक्ति गाऊं, पाप मार्ग तज पुण्य बढाऊं।
प्रबल पुण्य फल भक्ति चाहूं , स्थिर मन जिन धर्म निभाऊं॥16॥

दर्शन ज्ञान रूप संपत्ति, करूं अरिहंत सर्वज्ञ की भक्ति।
करूं मैं भक्ति विशुद्धि पाने, आया भक्ति गीत को गाने॥ 17॥

भवन वासी के भवन में मंदिर,स्वयं कांतिमय प्रतिमा सुन्दर।
उन प्रतिमा की करूँ वंदना, परम गति हो यही कहना॥18॥

कृत्रिम अकृत्रिम जितनी प्रतिमा, दर्शन से जगती है प्रतिभा।
अंतर बहिरंग पाऊं विभूति, नमूं सभी को लोक में जितनी।। 19।।

व्यंतर देवी के निवास में, नष्ट होय दोषों की आश में।
असंख्यात चैत्यालय वंदू, भाव वंदना कर अभिनंदू॥20॥

ज्योतिषी देवों के विमान में, बने चैत्यालय है महान वे।
अदभुत् सम्पत अरिहंतों की, पाऊं विभूति, आत्म धर्म की॥ 21॥

देव झुकाते चरण में माथा, मुकुट किरण से न्हवन है होता।
उन प्रतिमा को मैं भी वंदू, मुक्ति प्राप्ति हेतु अभिनंदू॥ 22॥

स्तुति जिनकी ना कर पाये, ऐसे भगवन शोभा पाये।
अर्हंत प्रतिमा कर्म रोकती, स्तुति इनकी पाप सोखती॥23॥

॥ शेर चाल॥

अरिहंत उत्तम तीर्थ घाट पार लगाये,
तीर्थ है महानन्द ये स्नान कराये।
अभिमान रूपी पाप ताप धोने आया हूँ,
लौकिक जनों का मान तीर्थ, खोने आया हूं ॥ 24॥

ज्ञान नदी में प्रवाह, ज्ञान दिव्य है।
लोकालोक के सुतत्व, पायें भव्य है॥
व्रत शील के विशाल तट, दो ही बने है।
इनके बिना ये न बहे, शुभ भाव घने है॥ 25॥

स्थित हो शुक्ल ध्यान में, निश्चल सदा रहते ।
वे श्रेष्ठ मुनि राजहंस जैसे शौभते॥
स्वाध्याय का गंभीर शब्द, गूंज रहा है।
गुप्ति समिति गुण अनेक, शोभ रहा है॥ 26॥

भंवर हैं क्षमा की दया के, फूल खिले हैं,
शोभित हैं लता लहर, परीषह की उठे हैं॥ 27॥

जिसने कषाय फेन को है, नष्ट कर दिया,
औ राग द्वेष काई को भी, नष्ट कर दिया।
मोह का कीचड़ नहीं है, शुद्ध है सरिता,
औ मगरमच्छ मरण के ना , ज्ञान की सरिता॥ 28॥

ऋषि श्रेष्ठ स्तुति के सबल शब्द है रहते,
औ विविध पक्षियों के, शब्द गूंजते रहते।
मुनि पुल की तरह जल के ऊपर ओर आयें है,
आस्त्रव नहीं संवर किया , संग निर्जराये हैं॥ 29॥

इन्द्र चक्री गणधर, भव्य निकट बैठते।
कलिकलुष काल के, वे पाप को धोते॥ 30॥

परवादी से अजेय तुम्हीं, हो परम पुनीत।
गंभीर भाव में नहा के, कर्म हो विनीत॥ 31॥

क्रोध को जीता, कि नेत्र लाल ना हुये।
मन को विकारी भाव के, उद्रेक न हुये॥
खेद दूर अहम् तजा, अर्हम हुये हो।
मन की विशुद्धि, चेहरे पे मुस्कान लिये है॥ 32॥

॥ शंभू छंद ॥

राग रहित आभूषण बिन, दैदीप्तमान प्रभू होते हैं,
निर्दोष प्रकृति सा रूप लिये, पट बिन ही मनहर लगते है।
हिंसा का क्रम दूर हुआ, औ शस्त्र रहित भी निर्भय हो,
विविध वेदना क्षय होने से, निराहार तृप्ति मय हो॥33॥

नख केशों की वृद्धि नहीं है, रज मल के स्पर्श रहित।
नूतन कमल गंध चंदन है, दिव्य गंध के उदय सहित॥

सूर्य चंद्र से दिव्य है लक्षण, आप सुशोभित होते हो।
सहस सूर्य के समा चमकते, नेत्रो को प्रिय लगते हो॥ 34॥

प्रबल राग औ मोह है मिथ्या, मनुज हृदय दूषित करता।
मुक्ति पंथ का प्रबल विरोधी, यदि प्रभु के चरणों आता॥
दर्श से प्रभु के शुद्ध वो होता, सम्यकदर्शन पाता है।
चहुं दिश में प्रभु कहीं से दीखे, शरद चंद्र सा दिखता है॥ 35॥

नम्रीभूत मुकुट माला मणि, किरण चंद्र से निकल रही।
चरण कमल को चुम्बित करती, अतुल रूप को निरख रही॥
ऐसा रूप अन्य तीर्थ का, कही नहीं देखा जाता।
दोष उदय से अंधे जन को, दर्श से पावन कर जाता॥ 36॥

मानस्तंभ सर भूमि खातिका, पुष्पवाटिका कोट बने।
नाट्यशाला औ वन उपवन में, वेदी मध्य में ध्वजा घने॥
कल्पवृक्ष स्तूप की पंक्ति, फटिक मणि दीवाल रहें।
नरसुर मुनि जा सभा में बैठे, पीठिकाग्र में प्रभु रहे॥ 37॥

क्षेत्र मध्य में स्थित पर्वत, उन पर बने जिनालय है।
नंदीश्वर मेरू पर्वत पर, जिनवर जी के आलय है॥
लोक में जितने चैत्य चैत्यालय, उन सबको मैं नमन करूं ।
भरतादि के भगवन्तों, का , बार-बार स्मरण करूं॥ 38॥

पृथ्वीतल पर बने बनाये, कृत्रिमा-कृत्रिम मंदिर है।
वन विमान औ भवन में स्थित, सुंदर-सुंदर मंदिर है॥
मनुज बनाये, इन्द्र से पूजित, जिन मंदिर स्मरण करूं।
देव पूजते मैं भी पूंजू, भाव भक्ति का नित्य धरूं॥39॥

जंबू धातकी पुष्करार्द्ध में, चंद्रकमल हैं स्वयं समा।
नील कण्ठ, औ वर्षा मेघ से, हैं जिनेन्द्र उत्पन्न जहाँ॥
सम्यकबोध चरित लक्षण धर, चार घातिया दहन किये।
भूतानागत वर्तमान के, तीर्थंकर को नमन किये॥ 40॥

श्री सुमेरू जंबू शाल्मलि में, चैत्यवृक्ष वक्षारों पर।
रतिकर कुंडल रूचक गिरीपर, दधिमुख अंजन पर्वत पर।।
विजयार्द्ध कुलाचल इष्वाकार में, मानुष गिरि व्यंतर आवास।
ज्योतिष भवनवासी के गृह के, नमूं जिनेन्द्र चरण का दास।।41।।

देव असुर धरणेन्द्र नाग नर, इन्द्रों द्वारा पूजित है।
पाप प्रणाशक, मनहारी है, भव्य भक्ति जग गुंजित है॥
घंटा ध्वजा अष्ट मंगल भी, नाथ की शोभा बढ़ा रहे।
स्थित तीन लोक के मंदिर, नमन भक्ति को बढ़ा रहे॥42॥

॥ अंचलिका ॥

॥ दोहा ॥

हे भगवान चैत्य भक्ति का , करता कायोत्सर्ग।
आलोचन करना चहूँ, भाव-भाव का अर्घ्य॥

॥ शंभू छंद ॥

उर्ध्व मध्य औ अधोलोक में, कृत्रिमा-कृत्रिम जिन प्रतिमा।
देव चतुर्विध परिवार संग, नित्यकाल करते पूजा॥
दिव्य न्हवन को दिव्य गंध है, धूप चूर्ण औ वस्त्र है दिव्य।
करूं वंदना, नमन करूँ मैं, रहता यहाँ पर भाव है दिव्य।
कर्म का क्षय हो सुगति गमन हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो।
फल यह चाहूं, भक्ति का मैं तो, जिन गुण संपति व्याप्ति हो॥

॥ दोहा ॥

भक्ति भाव से है किया, 'स्वस्ति' ने अनुवाद ।
भक्ति कर मुझको मिला, अपूर्व सुखों का स्वाद॥

***

॥ चारित्र भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्ति भूषण माता जी)

॥ शंभू छंद ॥

मुकुट हार केयूर मणि तो, तन की शोभा बढ़ाते हैं।
भास्वान तन उठे है मस्तक, मुनि चरणों झुक जाते हैं॥
इन्द्र सेवा करता है जिनकी, पंचाचार मुनि पालें।
उस आचार को नमन करूं मैं, टूटे पाप कर्म जाले॥ 1॥

व्यंजन अर्थ विनय उपधा औ, काल शुद्धि स्वाध्याय में हो।
अपने गुरु का नाम छिपा ना, बहुमान गुरुवर का हो॥
ज्ञाति कुलेन्दुना महावीर ने, आठ प्रकार का बतलाया।
ज्ञानावरण करम का क्षय नमूं, ज्ञानाचार को सिखलाया ॥ 2॥

जिनमत शंका अन्य प्रशंसा, भोगाकांक्षा आये नही।
ग्लानि दूर कर धर्म वृद्धि हो, पथ च्युत को पथ लाये सहीं॥
जिनशासन की कर प्रभावना, उपगूहन को धार अभी।
आदर भाव से शीश झुका कर, दर्शनाचार को नमें सभी॥ 3॥

शयनासन एकांत में करना, और तपाना इस तन को।
चर्या नियम व्रतों संग करना, ऊनोदर उपवासन को॥
इंद्रिय गज उन्मत्त न होवे, स्वादु रसों का त्याग करूँ।
मोक्ष हेतु छह बाह्य तपों की, स्तुतियां भी नित्य करूं॥ 4॥

स्वाध्याय से मन वश रहता, बाल वृद्ध मुनि सेवा कर।
तन से ममता तज के ध्यान कर , विनय भावना मन में धर॥
आत्म शत्रु है काम क्रोध जो, अंदर तप से दूर भगे।
अंतरंग से नमन करूं मैं, आत्म ज्योति भी शीघ्र जगे॥ 5॥

सम्यग्ज्ञान सुलोचन जिनके, जिन मत में श्रद्धान करें।
शक्ति छिपा न मुनि तप करते, इसको वीर्याचार कहे॥
भव से पार कराने वाली, है अछिद्र नौका सुंन्दर।
प्रबल गुणों संग, महानर पूजित, वंदू हो आतम अंदर॥6॥

तनु मन भाषा के निमित्त से, त्रिगुप्ति तो उदित हुई।
ईर्या आदि पांच समिति, पांच महाव्रत संग भई॥
तेरह प्रकार चारित्राचार को, नमस्कार हम करते है।
वीर काल में जैसा पाया, अन्य समय न होते है॥ 7॥

केवल दर्श ज्ञान हो उज्जवल, फिर अविनाशी पद पाऊँ।
आत्माधीन सुखों को चाहूँ, अनुपम तीर्थ को नित ध्याऊँ॥
पूर्ण परिग्रह त्यागी मुनिवर, सम्यक् चरित के धारी हैं।
ऐसे मुनि को नमस्कार करूं, मुक्ति की तैयारी है॥ 8॥

आगम विधि से अलग प्रवर्तन, मुनिजन को जो कराया हो।
आगम विरुद्ध किया कोई कारज, पाप का ताप बढ़ाया हो॥
उत्तम तपसी आश्चर्यकारी, सप्त ऋद्धि निधि धारी है।
नये-नये पाप बंधे जो सारे, नमन पाप के हारी है॥
यदि मिथ्यात्व का दोष लगाया, निन्दा पात्रा में तभी बना,
अपने आप की निन्दा करता, मिथ्या होवे भाव घना॥ 9॥

निकट भव्य जो मोक्ष का इच्छु, जग संताप सें काँप रहे,।
पाप शान्त ओजस्वी मुनिवर, विशाल चारित जो पाल रहे॥
उन्नत सीढ़ी चारित की जो, आरोहण इस पर करना।
जिनेन्द्र प्रभु के द्वारा दी है, इससे कर्म शमन करना॥10॥

॥ आंचलिक ॥

॥ दोहा ॥

चारित भक्ति के लिये, करता कायोत्सर्ग।
आलोचन निज का करूँ, मिले सौख्य अपवर्ग॥

॥ चौपाई ॥

सम्यग्ज्ञान का उद्योतन है, सम्यग्दर्श का अधिष्ठान है,
मोक्ष मार्ग का ये प्रधान है, क्षमा, कर्म निर्जरा ध्यान है।
पांच महाव्रत परिपूर्ण है, तीन गुप्ति अघ करें चूर्ण है,
पांच समिति सहित है ज्ञानी, ज्ञान ध्यान साधन गुण दानी॥
आगमादि में प्रवेश कराये, सम्यक् चारित को नित ध्याये,
पूजा वंदन नमन मैं करता, सुगति गमन के भाव मैं धरता।
जिन गुण संपति की प्राप्ति हो, समाधिमरण मुक्ति व्याप्ति हो,
सम्यक चारित मुझमें आये, इसीलिये भक्ति को गाये॥

***

॥ योगि भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माताजी)

॥ शंभू छंद ॥

असहनीय दुख नरक के जाने, औ उससे भयभीत हुये।
जन्मजरा अरू मरण रोग दुख, शोक से जो प्रज्वलित हुये॥
ऐसे ज्ञान को प्राप्त मुनि, वैराग्य पूर्ण हो जाता है।
बिजली बादल जल बुद-बुद सम, चिन्त्य मुनि बन जाता है॥1॥

व्रत समिति और गुप्ति सहित मुनि, मोह से पिंड छुड़ाया है।
ध्यान अध्ययन में लीन रहे वे, मन मुक्ति सुख पाया है।।
कर्म नाश को करें तपस्या, सच्चा शिव सुख पाना है।
बिना तपस्या कर्म मिटे ना, तन से तप करवाना है॥ 2॥

तन पर मैल चढ़ा है जिनके, पर अघ बंधन ढीले है।
मान काम रति कषाय ईर्ष्या, मुनि इन सबको कीले है।
सूर्य किरण से तपे शिखर पर, रवि सन्मुख ही मुख को किये।
तपश्चरण करते है मुनिवर, आत्म ध्यान में लीन हुये॥ 3॥

ज्ञानामृत का पान जो करते, ज्ञान का आनंद लेते है।
क्षमारूपि जल से तन सींचा, क्षमा सभी को करते है॥
लगा छत्र संतोष का जिसने, कर्म धूप से बचते है।
सूर्य सामने तीव्र ताप में, आतम ध्यान को करते हैं॥ 4॥

काजल भ्रमर मयूर कंठ से, इन्द्रधनुष भी चित्रित है।
बिजली तड़के वायु भड़के, गगन मेघ आच्छादित है॥
शीतल वायु जल की वृष्टि, निशा मुनि तरूतल बैठे।
डरते नाही अभय है रहते, ध्यान में निज आतम देखे॥ 5॥

वर्षा योग में तन को ताड़ित, करे बाण जल की धारा।
जग दुख से भयभीत महामुनि, सहते है चिंतन द्वारा॥
परीषह शत्रु घात हैं करते, धैर्य शाली औ श्रेष्ठ मुनि।
आतम बल से चारित पाले, डिगते ना उड़े कर्म धुनि॥ 6॥

हिमकण मिश्रित जल के द्वारा, काया तेज भी चला गया।
अविरल सी सी शब्द हो रहा, पत्र वृक्ष से टूट गया॥
कठोर वायु के झोंको में तो, कंबल धैर्य का ओढ़ा है।
चौराहे में स्थित होकर, शीत रात्रि को मोड़ा हैं॥ 7॥

एक वर्ष में तीन योग को, धारण करते हैं, मुनिवर।
तप से शोभित, पुण्य काया है, शाश्वत सुख पाने गुरुवर॥
अव्याबाध के सुख की इच्छा, करते हैं वे तप घनघोर।
होय समाधि देवे आशीष, करता विनती मैं कर जोड़॥ 8॥

धर्म शुक्ल मय ध्यानयोग से, अघ कल्मष को नष्ट किये।
धर्म शुक्ल के ध्यान से शोभित, कर्म को गुरुवर कष्ट दिये॥
मन वच काया तीन योग से, योगीश्वरों को नमन करूँ।
मुझमें ऐसी शक्ति आये, पाप ताप को शीघ्र हरूँ॥ 9॥

वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे, बैठ साधना करते हैं।
शीत ऋतु में देह मोह तज, गगन के नीचे रहते है॥
ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की गर्मी, गिरि शिखरों पर जाते है।
मोक्ष रूपी मंजिल पर चढ़ने, आतम ध्यान लगाते हैं॥10॥

॥ दोहा ॥

ऐसे श्रेष्ठ मुनिवरा, हितकर धर्म को देय।
संगत मुझे उनकी मिले, कर्म धूप को खेय॥ 11॥

गर्मी गिरि के शिखर पर, वर्षा वृक्ष के धाम।
शीत खुले मैदान में, साधु को करूं प्रणाम॥12॥

गिरि कंदर जंगल रहें, कर पात्री आहार।
परम गति को जाते है, करते मुक्ति बिहार॥13॥

॥ अंचलिका॥

॥ दोहा॥

योगीश्वरों की भक्ति का, करता कायोंत्सर्ग।
उसकी ही आलोचना, मिले चरण की शर्ण॥

॥ चौपाई॥

द्वीप अढ़ाई द्वि सिन्धु में, पन्द्रह और कर्म भूमि में।
मौन योग करते वीरासन, एक पार्श्व ही कुक्कुट आसन॥
वृक्षमूल आतापन करते, झर झर कर्म के झरने झरते।
बेला तेला पक्ष उपवास, रहते है आतम के पास॥
सदाकाल मैं करता अर्चा, पूजा वंदन की है चर्चा।
दुख का क्षय कर्मो का क्षय हो, उत्तम गति औ रत्नत्रय हो।
बोधि समाधि मरण जो होवे, जिन गुण सम्पत्ति को पावे॥

॥ दोहा॥

कर अनुवाद ये भाव हुआ, 'स्वस्ति' यह तप पाये।
सर्दी गर्मी वर्षा में, समता भाव बनाये॥

***

॥ आचार्य भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्ति भूषण माताजी)

॥ शंभू छंद ॥

सिद्ध गुणों की स्तुति करते, क्रोध जाल का नाश दिया।
गुप्ति पूर्ण हैं मुक्ति से नाता, सत्य वचन को धार लिया॥ 1॥

तप दीपक से तनु चमकता, मन सिद्धि की प्राप्ति चहे।
बँधे मूल अघ नाश कुशल है, नमन प्रतिक्षण उन्हें रहे॥ 2॥

गुण मणियां भी तन में रहती, षड् द्रव्यों के धारक है।
नही प्रमाद करें चर्या में, आलस शत्रु निवारक है॥
सम्यग्दर्श से शुद्ध आत्मा, हर पल वे करते रहते।
साधु समूह की रक्षा करके, संतोषित उनको करते॥ 3॥

मोह नाश को, करें घोर तप, शुद्ध प्रशस्त हृदय रहता।
स्व औ पर उपकार करन में, ज्ञान का झरना नित बहता॥
जन्तु रहित स्थान में रहते, पाप आशा को करते दूर।
छोड़ कुपथ को चले सुपथ में, आशीष देते हैं भरपूर॥ 4॥

मन वच काय से शुद्ध है शोभा, अधिक प्रायश्चित पिण्डाहार।
जीत परिषह शोभ बढ़ाये, दें आशीष का वे उपहार॥
क्रिया में प्रमाद न करते, सावधान हरपल रहते।
मुक्ति पथ की ओर चलें सब, वे उपदेश यही देते॥ 5॥

संयम अचल मेरू सम पालें, नींद में समय न व्यर्थ करें।
कायोत्सर्ग खड़ें हो करते, दुष्ट लेश्या से दूर रहे॥
गुफा शिखर में वास है करते, तन पर लेप न करते है।
गज इन्द्रिय को जीत लिया है, तन की ममता हरते है॥ 6॥

लोभ राग और अभिमान संग, माया ईर्ष्या को छोड़ा।
सरल-सरल परिणाम हैं जिनके, निज से निज नाता जोड़ा॥
नियमित स्वाध्याय कर-कर के वे, आतम शुद्ध बनाते हैं।
अनेक आसन ध्यान को करते , उपमा रहित कहाते हैं॥ 7॥

आर्तध्यान और रौद्र ध्यान से, दूर-दूर गुरू रहते है।
धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान से, निर्मल हृदय बनाते है।।
कुगति पथ पर नहीं वे चलते, त्रि गारव ना करते है।
पुण्य उदय से ऋद्धियां आई, नमन उन्हें हम करते है॥ 8॥

वर्षा ऋतु में वृक्ष के नीचे, ग्रीष्म काल गिरि पर जाते।
शीत ऋतु आकाश के नीचे, आतम ध्यान में रम जाते॥
चर्या देख के बहुजन सुधरे, सप्त भयों और पाप रहित।
होय प्रभावित भारी भक्त भी, ज्ञान ध्यान तप पुण्य सहित॥ 9॥

योग स्थिर औ नित्य लोकोत्तर, गुण अनेक से युक्त हुये।
कलुष भाव से कर्म जो आये, जन्म जरा से मुक्त हुये॥ 10॥

बड़ी भक्ति से आचार्य श्री को, पाप नाश को नमन करूँ।
अक्षय अविनाशी सुख हेतु, विधिपूर्वक नित ध्यान धरूँ॥11॥

॥ चौपाई ॥

श्रुत सागर के पार गामी है, स्वपर मत के भी ज्ञानी है।
बुद्धि प्रखर तप के हैं खजाना, ऐसे गुरु को शीश झुकाना॥ 12॥

छत्तीस मूलगुणों से सहित, पंचाचार से करें स्वपरहित।
शिष्य को शिक्षा दीक्षा देते, धर्माचार्य को नमन हैं करते॥13॥

गुरू भक्ति जो शिष्य करेगा, भवसिन्धु से वो ही तरेगा।
अष्ट कर्म को भी नश देते, जन्म मरण के दुख हर लेते॥ 14॥

नित्य जाप व्रत मंत्र को पढ़ते, ध्यानअग्नि में हवन है करते।
षट् आवश्यक को भी पालें, तप रूपी धन को धन माने॥

शील वस्त्र चन्द्रार्क तेज है, सच्चे सुख की ये ही सेज है।
सुभट मोक्ष द्वारे को खोले, मुख से अपने कुछ तो बोले॥15॥

ज्ञान दर्श के आप है नायक, मोक्ष मार्ग उपदेश के दायक।
चारित सागर सम गंभीर, गुरू रक्षा कर देवें धीर॥16॥

प्रिय स्पष्ट वाणी को बोले, सब शास्त्रों के राज को खोलें।
लोक स्थिति करें व्यवहार, निष्पृह प्रतिभा परम उदार॥
धर संतोष प्रश्न को सुनते, उत्तर पूर्व तैयार हैं रहते।
परम प्रभावक हैं मनहारी, गुण की खान, न निन्द विकारी॥17॥

पूर्ण ज्ञान औ शुद्ध वृत्ति है, सम्यक् पर उपदेश कृति है।
भव्यों को शिवमार्ग चलाते, विद्वानों से पूज्य कहाते॥
मार्दव कोमल भाव के धारी, निष्पृह, हो मुनियों के स्वामी।
सज्जन के गुरु और न होवे,नमन करूं पापों को खोवे॥18॥

विशुद्ध वंशी रूप है सुन्दर, आप जितेन्द्रिय आतम अंदर।
धर्म कथा से प्रेम है करते, सुख ऋद्धि की इच्छा न करते॥
सच्चे आचार्य ऐसे होवे, बुद्धिमान जन ऐसा कहते।
चरण-शरण में मैं भी आऊँ, गुरु चरणन में शीश झुकाऊं॥19॥

कामदेव की ध्वजा को जीता, तत्व द्रव्य की पढ़ी है गीता।
निर्विकार औ संग रहित है, संयम प्रेमी नियम सहित है॥
सुनय निपुण शास्त्रों को जाने, नित्य नमन गुरु तुमको माने।
जन्म मरण से हो भयभीत, इसी से गाते आतम गीत॥ 20॥
समकित जड़ औ ज्ञान स्कंध, चारित शाखा सुख का बंध।
मुनि समूह इस वृक्ष पे बैठे, महावृक्ष आचार्य को देखें॥ 21॥

॥ अंचलिका ॥

॥ दोहा ॥

भंते कायोत्सर्ग किया, भक्ति की आचार्य ।
भावना मेरी है गुरु, सफल होय सब कार्य॥

॥ चौपाई ॥

सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान , सम्यक् चारित्र से हैं महान।
पंचाचार के पालक आइरिय, श्रुतज्ञान देते हे वे नित॥
उपाध्याय साधु को ध्याऊं, रत्नत्रय गुण इनसें पाऊं।
अर्चाः पूजा नित्यकाल में, नमन औ वंदन सभी हाल में॥
दुःखों का क्षय, कर्मो का क्षय, आतम में होवे रत्नत्रय।
सुगति गमन औ समाधिमरण हो, जिन गुण संपत्ति का करण हो॥

॥ दोहा ॥

ऐसें गुरुवर प्राप्त हो, किया है भक्ति भाव।
'स्वस्ति' गुरु चरणों नमें, तिरे सभी की नाव॥

***

॥ पंचमहागुरु भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माताजी)

॥ चौपाई ॥

इन्द्रमुकुट मणि किरण की धारा, करें न्हवन प्रभु चरण पखारा।
अरिहन्त देव की भक्ति कर लूँ, नमन करूँ पापों को हर लूँ॥1॥

कर्म रिपु का समूह है नाशा, अष्ट गुणों का हो गया वासा।
इष्ट तुष्टि सम सिद्धि पाऊं, सिद्ध प्रभु को शीश झुकाऊँ॥2॥

आचारांग श्रुत सागर तरते, शुद्ध ज्ञान चारित्र को वरते।
पंचाचार में तत्पर रहतें, श्री आचार्य के चरण में नमते॥3॥

मिथ्यावादि के मद को हरते, अहम् अंध को नष्ट हैं करते।
उपाध्याय गुरु मैं शरणार्थी, पाप नाशने का मैं अर्थी॥4॥

जीव तत्व को जो पहचाने, चारित्र ध्वजा को वो फहरावें।
सम्यग्दर्शन दीप उजारी, साधु रक्षा करें हमारी॥5॥

जिन सिद्ध औ सूरि देशक, निर्मल गुण साधु के बेशक।
इन्हे मोक्ष प्राप्ति को वंदू, त्रि संध्या में इनको अर्चूं॥6॥

पंच नमन पापों को नाशें, मंत्र जो पढ़ता आत्म प्रकाशें।
मंगलों में है पहला मंगल, नष्ट करे कर्मों का जंगल॥ 7॥

अर्हत्सिद्धाचार्य उपाध्याय, साधु तप से कर्म भगाय।
मंगल रूप पाप के नाशक, मुक्ति पुरी के हैं ये शासक॥8॥

पंच परम परमेष्ठी ध्याऊँ, रत्नत्रय को शीश झुकाऊँ।
भक्ति से मैं करूं वंदना, मुझे मिले मुक्ति का अँगना॥ 9॥

इन्द्र चूड़ामणि किरण से शोभित, सुर नर को करते हैं मोहित।
पंच परमपद चरण को ध्याऊँ, आत्म रक्षा हो, मुक्ति पाऊँ॥ 10॥

॥ दोहा॥

प्रातिहार्य अरिहंत के, सिद्धों के गुण आठ।
अष्ट प्रवचन मातृका, आचार्यो का पाठ॥
उपाध्याय गुरु की विनय, साधु योग सु आठ।
स्तुति वंदन अर्चना, काटे कर्म जु आठ॥ 11॥

॥ अंचलिका॥

॥ दोहा॥

पंचमहा गुरु भक्ति का, करता कायोत्सर्ग।
आलोचन इच्छा करूं , अघ तज हो अपवर्ग॥

॥ चाल छंद ॥

अठ प्रतिहार्य संग में है, अरिहंत प्रभु जग में है।
अठ गुण सम्पन्न शिखर पर, स्थित है लोक के ऊपर॥ 1॥

आचार्य श्रुत के धारी, उवज्झाय देशना भारी।
रत्नत्रय गुण का पालन, तत्पर साधु है लालन॥ 2॥

करूँ नित्यकाल में अर्चा, पूजन वंदन की चर्चा।
कर नमस्कार सुख पाऊँ, दुःखो को शीघ्र नशाऊँ॥ 3॥

कर्मों का क्षय मेरा होवे, रत्नत्रय निज में आवें।
हो सुगति गमन भक्ति से, हो समाधि मरण युक्ति से॥ 4॥

मिले जिन गुण की सम्पत्ति, ना करम की हो आपत्ति।
पांचो परमेष्ठी ध्याऊं, चरणों में शीश झुकाऊँ॥ 5॥

॥ दोहा॥

पंच परम परमेष्ठि का, ध्यान करूँ मैं नित्य।
'स्वस्ति' नमन स्वीकार प्रभु , तज दो भाव अनित्य॥

***

॥ शान्ति भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री स्वस्तिभूषण माताजी)

॥ शंभू छंद ॥

हे प्रभु भक्त स्नेह से तेरे, चरण युगल को प्राप्त हुये।
कारण कर्म समूह जगत में, घोर भयंकर कष्ट दिये॥
ग्रीष्म काल का सूर्य जगत को, ताप से खूब तपाता है।
चन्द्र किरण छाया औ जल से, प्रेम यही करवाता है॥ 1॥

कुपित साँप के डसने पर तो, फैला है विष सारे तन।
विद्या,औषध पानी मंत्र औ, हवन के द्वारा होय शमन॥
उसी भांति प्रभु चरण कमल की, भव्य स्तुति गाते हैं।
तन संबंधी औ बहु विघ्नो को, शीघ्र शांत करवाते है॥ 2॥

तप्त स्वर्ण सम पीत कान्ति है, सुन्दर-सुन्दर शान्तिनाथ।
चरण आपके जो झुकता है, विघ्न दूर हों, हो क्षय ताप॥
उदित सूर्य की किरण सैकड़ों, नेत्र कान्ति को हर लेती।
रात्रि का जो अंधकार है, शीघ्र उसे भी हर देती॥ 3॥

बड़ें बड़ों को मार पछाड़ा, उन पर विजय प्राप्त कीनी।
रौद्र रूप भी हैं डरावना, सुर नर को मृत्यु दीनी॥
कौन बचे मृत्यु से जग में, यदि न होते चरण कमल।
स्तुति नदी न जग में होती, यदि न होते शान्ति विमल॥ 4॥

लोकालोक ज्ञान की मूर्ति, तीन छत्र सिर झूम रहे।
रत्न जड़ित है धर्म दंड भी, युग पद गीत भी गूंज रहे॥
सुनकर सिंह दहाड़ को हाथी, शीघ्र दूर भग जाते है।
भक्ति गीत को सुनके भक्त के, रोग दूर हो जाते है॥ 5॥

देवी नयन तो निरखें तुमको, विपुल श्रेष्ठ श्री चूड़ामाणि।
बाल सूर्य सी कान्ति वाले, भामण्डल की आभा बड़ी॥

अव्याबाध औ अचिन्त्य प्रभुवर,अतुल हो अनुपम अविनाशी।
चरण कमल युग स्तुति करता, हो जाये मुक्ति वासी॥6॥

प्रभा पुँज जब तक न उदित हो, कमल अधिक निद्रा लेते।
हे भगवन तव चरण कमल बिन, प्राणी पाप भार ढोते॥
मन मंदिर में प्रभु ना जब तक, मंदिर भी क्या कर लेगा।
हृदय में प्रभु के चरण कमल हो,पाप समूह को नश देगा॥7॥

हे शान्ति जिनेन्द्र जी इस धरती पर,जिनका मन हैं शान्त हुआ।
शान्ति के इच्छुक बहु प्राणी ने, पद कमलो में वास किया॥
आराध्य देव के चरण कमल, जो भक्त भक्ति से ध्याता है।
शान्ति अष्टक पढ़ खुश होता, सम्यग्दर्शन पाता है॥ 8॥

॥ चौपाई ॥

मुख चन्दा के सम निर्मल है, व्रत संयम गुण शील विमल है।
आठ एक सौ लक्षण तन में, जिन उत्तम प्रभु शान्ति नमन है॥ 9॥

पंचम चक्री सुर नर पूजित, षोडस तीर्थंकर यश गुंजित।
शान्ति प्राप्ति हो शान्ति को ध्याऊं, चरण कमल में शीश झुकाऊं॥10॥

तरू अशोक सुर पुष्प की वृष्टि, भामंडल आभा शुभ दृष्टि।
सिंहासन छत्रत्रय तप हरते, इक योजन ध्वनि चामर फिरते॥ 11॥

जग अर्चित श्री शान्तिनाथ हैं, भक्त चरण में झुका माथ है।
सर्व जीव को शान्ति देवें, परम शान्ति मुझकों को भी देवे॥ 12॥

सर्व देव प्रभु स्तुति गाते, जन्म कल्याणक जब भी मनाते।
मुकुट हार कुंडल पहनाया, उच्च वंश में दीप जगाया॥
शान्ति निरन्तर मुझकों देवें, जिन तीर्थंकर चरण को सेंवे।
शान्तिनाथ जिनवर को ध्याऊँ, शान्ति भक्ति पढ़ हर्षाऊं॥ 13॥

देश राष्ट्र औ नगर तपोधन, यति मुनि आचार्य प्रजानन।
प्रभु पूजक जिन धर्म के रक्षक, सबको शान्ति दें जिन भगवन॥ 14॥

सर्व प्रजा का हो कल्याण, राजा धर्मी शक्तिवान।
व्याधि नाश दुष्काल न होवे, चोरी कैंसर रोग को खोवे॥
जग में दुख क्षण भर न होवे, सब सुखदायी हवा बहावें।
धर्म चक्र जिन सतत रहेगा, जिनवर की महिमा को कहेगा॥15॥

मोक्ष की इच्छा करें मुनिजन, रत्नत्रय का मिलता साधन।
समीचीन तप वृद्धि पावे, शुभ स्थान उसे बतलावें॥
उत्तम काल हो उत्तम भाव, आत्मानंद का होय प्रभाव।
प्रभु अनुग्रह से सब पायें, शान्ति प्रभु को शीश झुकाये॥26॥

॥ दोहा॥

घाति कर्म को नाश के, ज्ञान का सूर्य उगाये।
वृषभ आदि तीर्थंकरा, जगत शान्ति फैलाये॥17॥

जिन शासन शासित मुनि, शान्ति उनको होय।
अखंड तपश्चर्या करें, शान्ति बीज को बोय॥
जीत कषायें सुख मिला, समता शान्ति पाये।
आत्म स्वाभावी मुनि यति, शान्ति सिद्ध बन पाये॥18॥

॥ गीता छंद ॥

संयम का अमृत पी मुनि, तृप्ति को पा जीवत रहे।
शुद्धात्मा जाग्रत हुआ, वह हो प्रसन्न आनंद रहे॥
सिद्धि सुख पुरूषार्थ कर, वे सिद्धि सुख को प्राप्त हो।
त्रिलोक में अर्हत आज्ञा, का प्रभाव भी व्याप्त हो॥19॥

हे शान्ति प्रभो जग प्राणियों को, सुखी करों वे स्वस्थ हों।
वे स्वर्ग औ मुक्ति में जावे, दूर सारे कष्ट हो॥
नीति जगत में बनी रहे, औ पराक्रमी राजा भी हो।
विद्या मिले विद्वान को, अघ ताप का ना नाम हो॥20॥

।।दोहा।।

मोक्षदायी जिन धर्म है, सदा रहें जयवन्त।
यही प्रार्थना आपसे, मिले मुक्ति का पंथ॥

॥ अंचलिक ॥

॥ दोहा ॥

इच्छा है शान्ति प्रभो, ध्यान में होऊँ लीन।
निज की करूँ आलोचना, शान्ति भक्ति स्वाधीन॥

॥ चौपाई ॥

पंच कल्याणक से सम्पन्न, प्रातिहार्य चरणों उत्पन्न।
चौंतीस अतिशय से संयुक्त, बत्तीस इन्द्र की भक्ति संयुक्त॥1॥

वासुदेव बलदेव प्रणाम, चक्र ऋषि मुनि यति गान।
मुनिवर भी स्तुतियां गायें, ऋषभ आदि वीरा गुण गाये॥ 2॥

अर्चा महा पुरूषों की करता, पूजा वंदन नमन भी करता।
दुःखो का क्षय कर्मों का क्षय, आतम में होवे रत्नत्रय॥ 3॥

सुगति गमन हो मोक्ष पधारे, समाधि मरण हो चरण तुम्हारे।
जिनगुण सम सम्पति पाऊं, शान्ति प्रभों को शीश झुकाऊं॥ 4॥

॥ दोहा ॥

ऋषि मुनियति को शान्ति , सब जग शान्ति पाये।
'स्वस्ति' की है भावना, शान्ति प्रभु को ध्यायें॥

***

॥ समाधि भक्ति ॥

॥ हिन्दी अनुवाद ॥

(परम पूज्य आर्यिका रत्न 105श्री स्वस्ति भूषण माताजी)

॥ शंभू छंद ॥

आत्म के अभिमुख आत्म संवेदन, गुण विशेष तुममें आये।
श्रुत चक्षु से देखने वाला, केवल चक्षु को लख आये॥
शास्त्राभ्यास हो प्रभु का स्तवन, श्रेष्ठ मनुज की संगत हो।
सदाचारी की करूं प्रशंसा, मौन रहूँ दोषी संग हो॥ 1॥

हितमित प्रिय ही वाणी बोलूं, आत्म तत्व के भाव रहें।
इतनी बात तभी तक होवें, मुक्ति प्राप्त तक साथ रहे॥
जिन पथ में मम श्रद्धा होवे, मिथ्या रूचि सब हट जावे।
जनम-जनम जिनवाणी भक्ति , जिनवर के गुण नित गावे॥ 2॥

गुरु चरण सन्यास मरण हो, जनम जनम चरणों में रहे।
चैत्यालय जयघोष करूं मैं, हृदय में भक्ति धार बहें॥
जन्म करोड़ों पाप उपार्जित, प्रभु दर्शन से नष्ट हुये।
जन्मजरा मृत्यु की जड़ जो, जिन वंदन से नष्ट किये॥ 3॥

बाल्य अवस्था से अब तक तो, श्री चरणों की सेवा करी।
कल्पवृक्ष हे कामधेनु, तुम नाम से आतम गगरी भरी॥
उस सेवा का फल यह चाहूं, सामने हो तुम अंत समय।
कंठ मेरा प्रभु नाम जपे, यही हाथ जोड़ करूँ विनय॥ 4॥

जब तक मुक्ति प्राप्त न होवे, हृदय में तेरा वास रहे।
चरण रहे हृदय में मेरे, यही प्रार्थना दास करें॥
भक्त मनुज को दुर्गतियों से, जिन भक्ति ही बचाती है।
पुण्य कोष भी भरता इससे, बनता मुक्ति निवासी है॥ 5॥

पंच अरिंजय पंच यशोधर, पांच हुये मतिसागर है।
तीर्थंकर सीमंधर पांचों, नमूं गुणों के आकर है॥

रत्नत्रय चौबिस तीर्थकर, पंच गुरु को वंदन है।
चारण ऋद्धिधारी गुरु के चरणों का अभिनंदन है॥ 6॥

ब्रह्म का वाचक सिद्धचक्र का, अर्हम् शुद्ध बीजाक्षर है।
ध्यान साधना करे जो इनकी, होवे आतम आदर है॥
अष्ट कर्म से रहित सिद्ध, मुक्ति के घर में रहते हैं।
सम्यक्त्वादि गुणों सहित है, नमन भाव से करते हैं॥ 7॥

सुर सम्पत्ति आकर्षित हो, मुक्ति लक्ष्मी वशीकरण।
चहुँगति संकट का उच्चाटन , स्तंभन दुर्गति मरण॥
मोह का सम्मोहन करता, है, नमस्कार यह मंत्र महान।
रक्षा करना रक्षा करना, मंत्र देवी हो तुम्ही प्रमाण॥ 8॥

काल अनंता संसारा की, परंपरा का छेद करो।
चरण कमल स्मरण करूं मैं, हे जिन भक्ति रक्षा करो॥
अन्य शरण तो कहीं ना मुझको, भाग्य विधाता आपहि हो।
करूणा करकें रक्षा कीजिये, मेरे स्वामी आपहि हो॥9॥

वीतराग से बढ़कर जग में, ना कोई था ना होगा।
तीन लोक में आप सिवा तो, ना रक्षक था ना होगा॥
भव-भव में जिनवर की भक्ति, सदा सदा ही बनी रहे।
प्रतिदिन हरपल हरक्षण भक्ति, गीत जुबां पे सदा रहे॥10॥

करूँ याचना करूँ याचना, करूँ याचना बारम्बार।
जब तक जीऊं भक्ति गाऊं, जिनवर जी का हो दरबार॥
श्री जिनवर जी की भक्ति से, भूत सर्प सब भग जावें।
विघ्न समूह का नाश भी होवे, विष निर्विष भी हो जावें॥11॥

।।अंचलिक दोहा।।

करूँ समाधि भक्ति मैं, निज आलोचन सार।
प्रभु भक्ति से ही मिले, निज समाधि का द्वार॥

॥ चौपाई ॥

मरण समाधि पूर्वक होवे, इक दिन फिर मुक्ति को पावे।
रत्नत्रय के प्रभू प्ररूपक, निज समाधि के आप निरूपक॥
अब समाधि भक्ति के द्वारा, हमने प्रभु का रूप निहारा।
नित्यकाल में अर्चा गाऊँ, पूजा वंदन कर हर्षाऊं॥
नमस्कार और वंदन करता, फल दुःखों को क्षय करवाता।
कर्म का क्षय रत्नत्रय प्राप्ति, सुगति गमन जिन गुण की संपत्ति॥

***

॥ श्री नन्दीश्वर भक्ति ॥

हिन्दी पद्यानुवाद परम विदुषि, लेखिका आ. स्वस्ति भूषण

॥ दोहा ॥

दर्शन की मुझे आशा है, नंदीश्वर है दूर।
यहीं बैठ भक्ति करें, करों कर्म को चूर॥

शम्भू छन्द

नन्दीश्वर की प्रतिमाओं का, सुर समूह वंदन करते।
अविनाशी अकृत्रिम मंदिर, कर्म रूपी रज को हरते॥
मन वच काया की शुद्धि से, नमस्कार हम करते हैं।
है मनोज्ञ जिन प्रतिमायें वे, सुख के झरने झरते है॥
॥ 1-2 ॥

अधोलोक में भवनवासी के, भवन सात कोटि मंदिर।
व्यंतर देव के भवनो में भी, है असंख्य प्रभु जिन मंदिर।
भवन वासी सुर व्यंतर वासी, स्तुति प्रभु की करते हैं।
उन चैत्यालय की स्तुति कर, नमस्कार हम करते है॥
॥ 3-4 ॥

ज्योतिष देवों के विमान में, सुंदर-सुंदर चैत्यालय।
औ वैमानिक के विमान में, जिन प्रतिमाओं के आलय॥
गिन सकते है कह सकते हैं, इतने स्वर्ग में मंदिर है।
दर्शन से सुर पाप को धोते, पाते सौख्य संमदर है॥
॥ 5-6 ॥

चतु शतक अट्ठावन मंदिर, मनुज लोक में बतलाये।
अकृत्रिम ये बने चैत्यालय, मनुज लोक को चमकाये॥
तीन लोक अकृत्रिम मंदिर, अद्भुत-अद्भुत सुंदर हैं
देवो द्वारा पूजित हैं ये, ध्यान के सत्य समंदर॥
॥ 7-8-9 ॥

वक्षार रूचक कुण्डल विजयार्ध में, मनुजोत्तर के गिरि पर है।
इष्वाकार कुलाचल के संग, उत्तर देव कुरू पर है॥
एक दिशा में तेरह पर्वत, चार दिशा में बावन है।
दधि मुख रतिकर सुन्दर नाम है, नंदीश्वर में सावन है॥
॥ 10-11-12 ॥

कार्तिक फाल्गुन षाढ़ माह की, पक्ष सुदी की आठें से।
प्रमुख इन्द्र सुर संघ को लेकर, भक्ति करें गंधाक्षत से॥
सौधर्म इन्द्र अभिषेक है करता, बाकी प्रभु को निहार रहे।
देवी मंगल पात्र को धरती, अप्सरायें तो नृत्य करें॥
॥ 13-14-15-16-17 ॥

कर अभिषेक सुगन्धित चूरा, परिक्रमा भी करते है॥
पंचमेरु में भद्रशाल और नन्दन सोम की करते है।
शुभकार्यों का फल भी शुभ है, पुण्य को संचय करते है॥
आठ दिनों तक पूजा करके, वापिस गमन वे करते है॥
॥ 18-19-20 ॥

॥ नंदीश्वर के चैत्यालयो की विभूति ॥

गंध कुटी सिंहासन सुन्दर, तोरण वेदी में शोभ रहा।
मानस्तंभ औ चैत्य वृक्ष संग, उपवन सबको मोह रहा॥
दस-दस पंक्ति ध्वज की फहरें, तीन परिधि का मंडप है।
खेल स्थल अभिषेक स्थल औ, नाटक गीत का मंडप है॥
कमल युक्त हैं वहां सरोवर, इक सौ अठ शुभ मंगल है।
गंध कुटी में शोभित हैं वे, इक सौ अठ जिन प्रतिमा है॥
॥ 21-22-23-24-25 ॥

पांच शतक धनु ऊँची प्रतिमा, समचतुरस्त्र संस्थान वाली।
कोटि सूर्य से प्रभा है ज्यादा, मणि स्वर्ण चांदी वाली॥
तेजस्वी औ बने यशस्वी, जो प्रतिमा को नमन करे।
मैं भी वंदन नमन हूँ करता, अंतर तम के पाप हरे॥
॥ 26-27 ॥

भूतानागत वर्तमान के, एक सौ सत्तर क्षेत्रों में।
जो भी तीर्थंकर विद्यमान हो, दर्श से शान्ति नेत्रों में॥
प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथ जी, असि मसि का उपदेश दिया।
सब कर्मों से मुक्त ही होकर, अष्टापद से मोक्ष लिया॥
॥ 28-29 ॥

वसुपूज्य जी वासूपूज्य जी, आपत्ति का अंत किया।
चम्पापुर से मोक्ष पधारे, पावे मुक्ति कंत जिया॥
नारायण बलदेव से पूजित, नेमिनाथ जिनराज हुये।
सभी कषाय शत्रु को जीता, गिरनारी से मोक्ष गये॥
॥ 30-31 ॥

सिद्धि वृद्धि तप तेज को पाया, गुण के बीच विराजें है।
पावापुर के मध्य सरोवर, वीर मोक्ष में साजे है॥
अतुल कीर्ति को धारण कीना, शेष तीर्थंकर बीसों ने।
गिरि सम्मेद से मोक्ष पधारे, नमन हैं उनके चरणों में॥
॥ 32-33 ॥

पर्वत धरती बिल गुहा वन, सिन्धु वृक्ष की शाखा में।
गणधर मुनिवर मोक्ष पधारे, नमूं सिद्ध जिन माथा मैं॥
जिन प्रतिमा निर्वाण क्षेत्र जा, वंदन जो भी करते है।
भव विच्छेद का कारण है ये, यात्रा जो भी करते है॥
॥ 34-35-36 ॥

पुण्य पाठ को जो श्रद्धा से, त्रि संध्या में पढ़ता है।
गणधर पूजित पद को पावे, आत्म ज्ञान में बढ़ता है॥
नंदीश्वर को यहीं से वंदन, भाव सहित हम करते है।
भाव से हम अनुमोदन करते, दुख दारिद्र को हरते हैं॥37॥

॥ शेर चाल ॥

(तर्ज दे दी हमें आजादी......)

पसीना और मलमूत्र नही, बल अतुल होता।
सौरभ है तनु रक्त श्वेत, प्रिय वचनों से नाता॥
वज्र का शरीर, सहस लक्षणों वाला।
गुणरुप सुंदर हैं कहे, जिन नाम की माला॥
॥ 38-39 ॥

कोश चार सौ सुभिक्ष, गगन में गमन।
उपसर्ग कवलाहार वध नही है, नमन॥

चहुँ दिश में चार मुख, विद्याओं के स्वामी।
छाया नही हिले न पलक, हो केवलज्ञानी॥
चउ घाति कर्म क्षय किये, भगवान बन गये।
उत्तम है देवकृत चौदह अतिशय तुम्हारे, मोक्ष में गये॥
॥ 42-43॥

भाषा है मागधी, समूह मैत्री भाव है।
सब ऋतुओं के फल फूल, प्रभु का प्रभाव है॥
रत्नों की वसुधा, वृक्षों से सुशोभित।
आनंद-ही-आनंद जीव, प्रभु पे मोहित॥
॥ 44-45॥

भगवान का विहार जब, आकाश में होता।
धरती पे चले मनुज, ऊपर प्रभु को देखता॥
तब देव भूमि धूलि कांटो से रहित करें।
औ मेघ बन के देव, वृष्टि जल की हैं करें॥
॥ 44-45॥

सात आगे सात पीछे, पंद्रह पंक्ति है।
पच्चीस है दो सो कमलकी, यह तो गिनती है॥
हरी भरी पृथ्वी मानो, ऐसी लगती है।
वैभव प्रभु का देख के, खुश पृथ्वी होती॥
॥ 46-47॥

चारों दिशा निर्मल हुई, आकाश भी हुआ।
ज्योति विमान व्यंतरो का, आना भी हुआ॥
निर्मल है रत्न की किरण औ, सहस आरे है।
वो धर्मचक्र चले आगे, सूर्य द्वारे है॥
॥ 48-49-50॥

धर्म चक्र से सम, अठ मंगल द्रव्य है।
श्रद्धा औ प्रीति धरें देव, होते भव्य है॥
शाखा है नील मणियों की, हरी मणि के पत्ते।
बैठे अशोक वृक्ष नीचे, सघन है पत्ते ॥
॥ 51-52 ॥

मंदार कुन्द कुमुद नील, कमल मालती।
मद सहित भौरे हैं झूमे, पुष्प की वृष्टि॥
कटक कटि कुण्डल सूत्र, देव पहने हैं।
सुंदर शरीर वाले देव, चँवर ढोरे है॥
॥ 53-54॥

सहस सूर्य लुप्त, भामंडल के तेज से।
है दुंदुभि का नाद, वहां वायु वेग से॥
तुम त्रिलोकी नाथ, तीन छत्र शोभते।
अनुपम है मोतियों का जाल, मन को मोहते॥
॥ 55-56-57॥

कर्ण औ हृदय को हरे, वाणी आपकी।
चारों दिशा में एक योजन, जाके फैलती॥
सिहों सहित सिहांसन है, फटिक मणि का।
अतिशय है जिनके उन्हें नमन, शुद्ध भक्त का॥
॥ 58-59-60॥

॥ दोहा ॥

नंदीश्वर की भक्ति का, करता कायोत्सर्ग।
आलोचन इच्छा करूं, मिले मुझे अपवर्ग॥

॥ चौपाई ॥

॥ अंचलिका ॥

नंदीश्वर की चार दिशा मे, और वहाँ की चहुँ विदिशा में।
अंजन दधिमुख रतिकर पर्वत, उन पर बावन मंदिर दृढ़वत॥1॥

कल्पवासी और व्यंतर वासी, ज्योतिषी सुर और भवनवासी।
दिव्य अष्ट द्रव्यों को लेकर, पूजा वंदन करते जाकर॥ 2॥

कार्तिक फागुन माह आषाढ़ में, सुदी अष्टमी भक्ति राह मे।
पूरन मासी तक करें पूजा, करें अर्चना काम न दूजा॥ 3॥

महापर्व महाउत्सव करते, अर्चा वंदन पूजा करते।
दुख का क्षय कर्मो का क्षय हो, सुगति गमन और रत्नत्रय हो॥ 4॥

समाधिमरण जिन संपत्ति पाऊँ , नंदीश्वर को शीश झुकाऊँ।
नंदीश्वर के जिन है नंदन, नंदीश्वर जिन आलय वंदन॥ 5॥

॥ दोहा॥

पूज्यपाद आचार्य ने, संस्कृत लिखा है पाठ।
''स्वस्ति'' ने अनुवाद कर, लिया भक्ति का स्वाद॥6॥
अक्षर मात्रा छंद में, गलती यदि हुई॥
शुद्ध करो भविमान जन, भक्ति पुण्यमई॥

--❖❖❖--